संक्षिप्त रामचन्द्रिका

[आगरा यूनीवर्सिटी द्वारा बी० ए० कक्षा के लिए स्वीकृत]

सम्पादक

जगन्नाथ तिवारी, एम० ए०, शास्त्री

अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग

आगरा कॉलेज, आगरा

आगरा

गयाप्रसाद एण्ड संस

पुस्तक प्रकाशक व विक्रेता

१९४५. मूल्य २)

निवेदन

रामचन्द्रिका महाकवि केशव की एक उत्कृष्ट कलापूर्ण रचना है। बहुत समय से उसका अध्ययन-अध्यापन विश्वविद्यालयों तथा हिन्दी की अन्य परीक्षाओं के लिए होता आ रहा है किन्तु उसके बृहदाकार होने के कारण इस कार्य में अत्यन्त कठिनाई होती आई है। इसका अनुभव प्रस्तुत लेखक को भी बार-बार हुआ है और उसे रामचन्द्रिका के एक ऐसे संक्षिप्त संस्करण की आवश्यकता प्रतीत होती आई है जिसमें केशव की मुख्य विशेषताएँ भी सुरक्षित रहें, प्रधान सरस स्थलों का त्याग भी न हो तथा गृहीत विषयों की क्रम-बद्धता भी बनी रहे। इसी उद्देश्य से प्रस्तुत संग्रह तैयार किया गया है। आशा है जिस दृष्टि से यह संस्करण प्रस्तुत किया गया है उस दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगा।

विनीत

जगन्नाथ तिवारी

प्रस्तावना

केशवदास का संक्षिप्त परिचय

हिन्दी के अनेक कवियों ने अपने ग्रन्थों में अपने विषय में कुछ भी नहीं कहा है और उनके सम्बन्ध में हमारा जो कुछ ज्ञान है वह केवल कल्पना तथा अनुमान पर ही आश्रित है। हर्ष की बात है कि केशव ने अपने ग्रन्थों में कई स्थलों पर अपना तथा अपने कुल का थोड़ा-बहुत परिचय दिया है जिसके आधार पर यह विदित होता है कि वे जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे, इनके कुल में बराबर संस्कृत के विद्वान् होते आए थे और उनमें से अनेक को राजाश्रय प्राप्त था। रामचन्द्रिका के आरम्भ में अपने वंश का परिचय देते हुए केशवदास कहते हैं :—

सनाढ्य जाति गुनाढ्य हैं जग सिद्ध शुद्ध सुभाव।
सुकृष्णदत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पंडितराव॥
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि कै जिन जानियो मत साध॥
उपज्यो तेहि कुल मंदमति शठ कवि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकाश॥

इस उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट ही है कि केशवदास के पिता काशीनाथ मिश्र तथा पितामह कृष्णदत्त मिश्र संस्कृत शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे और उनकी अत्यन्त अधिक विख्याति थी। इन्हीं कृष्णदत्त मिश्र को तत्कालीन ओड़छा-नरेश रुद्रप्रताप जी ने अपने यहाँ बुलाकर पुराण-वृत्ति पर नियुक्त किया था। महाराज रुद्रप्रताप का परिचय देते हुए केशवदास ने अपने कविप्रिया-ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है :—

नृप प्रतापरुद्र सु भये तिनके जनु रन रुद्र।
दयादान को कल्पतरु गुननिधि सील समुद्र॥
नगर ओरछो जिन रचो जग में जागति कृत्ति।
कृष्णदत्त मिश्रहिं दई जिन पुरान की वृत्ति॥

इन्हीं प्रसिद्ध रुद्रप्रताप के पुत्र मधुकरशाह हुए जिन्होंने केशवदास के पिता काशीनाथ मिश्र का अत्यन्त आदर किया और जिन्हें केशवदास के बड़े भाई बलभद्र मिश्र पुराण सुनाया करते थे। मधुकरशाह के अनन्तर उनके ज्येष्ठ पुत्र रामशाह ढलती उम्र में ओड़छे की गद्दी पर बैठे। उन्होंने सारा राज्य-कार्य अपने छो भाई इन्द्रजीतसिंह के ऊपर छोड़ दिया। इन्द्रजीतसिंह बड़े गुण-ग्राही थे और अपनी कवित्व-शक्ति तथा विद्वता के कारण केशव का उनके यहाँ अत्यन्त अधिक मान हुआ। वे केशव को अपने गुरु तथा मन्त्री तुल्य मानते थे और उन पर अत्यन्त अधिक भरोसा रखते थे। केशव के प्रति इन्द्रजीत के इसी स्नेह के कारण रामशाह भी केशव का अत्यन्त आदर करते थे। निम्न पंक्तियों में केशवदास ने इसी बात की ओर संकेत किया है :—

गुरु करि मान्यो इन्द्रजित, तन मन कृपा विचारि।
ग्राम दये इकवीस तब, ताके पाँय पखारि॥
इन्द्रजीत के हेत पुनि, राजा राम सुजान।
मान्यो मन्त्री मित्र कै, केसवदास प्रमान॥

इन्द्रजीत की सभा में केशवदास का इतना मान था कि राज्य के प्रत्येक कार्य में केशव का पूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा था। जब कोई राजनीतिक उलझन आ उपस्थित होती थी उसे सुलझाने के लिए केशव का ही सहारा लिया जाता था। एक बार अकबर ने ओड़छा नरेश पर एक करोड़ का जुर्माना कर दिया था। इस जुर्माने को माफ कराने के लिए केशव ही भेजे गए। उन्होंने अपनी

कवित्व-शक्ति से बीरबल को मुग्ध कर दिया और बीरबल ने बादशाह से कहकर वह जुर्माना माफ करा दिया। इसके अनन्तर बीरबल से केशव की घनिष्ठता और भी बढ़ती ही गई और बीरबल केशव के अत्यन्त बड़े मित्रों में से एक हो गए।

केशव के महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व की छाप राजदरबार के आन्तरिक जीवन पर भी खूब पड़ी। इस प्रतिभाशाली कवि के सम्पर्क से दरबार का सारा वातावरण कवित्वमय हो गया। वहाँ की वेश्याएँ भी विदुषी तथा काव्य-रचना में निपुण हो उठीं और जीवन की अपवित्रता से हटकर पवित्रता तथा पातिव्रत्य को अपनाने लगीं। कहा जाता है कि इन वेश्याओं में रामप्रवीन सब से अधिक प्रसिद्ध थी और उसी के आग्रह से केशव ने कविप्रिया की रचना की थी। कहते हैं कि एक बार जब वह अकबर के दरबार में बुलाई गई थी तो उसने अपनी कवित्व-शक्ति से अकबर को केवल मुग्ध ही नहीं किया किन्तु उसी के द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा भी की। उसकी "ऊँचे ह्वै सुर बस किये, सम ह्वै नर बस कीन; अब पताल बस करन को ढरकि पयानो कीन"—कविता को सुनते ही अकबर झूम उठा किन्तु "जूठी पतरी भखत हैं, वायस बारी स्वान" की चोट से होश में आया। कहा जाता है कि रामविवाह सम्बद्ध जितनी गालियाँ हैं सब प्रवीनराय की ही लिखी हुई हैं। केशव ने बड़ी उमंग के साथ प्रवीनराय का निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णन किया है :—

> रतनाकर लालित सदा, परमानन्दहि लीन।
> अमल कमल कमनीय कर रमा कि राय प्रवीन॥
> राय प्रवीन कि सारदा, सुचि रुचि रंजित अंग।
> वीना पुस्तक धारिनी, राजहंस-सुत संग॥

इस प्रकार इन्द्रजीत के आश्रय में केशव का जीवन अत्यन्त

ही सुखमय था और ऐसा प्रतीत होता था मानो वे ही राज्य कर रहे थे। केशव ने स्वयं एक स्थल पर कहा है कि "भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग जुग, केशोदास जाके राज राज सो करत है"। इसके अनन्तर सं० १६६२ में अकबर के मर जाने पर जहाँगीर ने ओड़छे का राज्य वीरसिंह को दे डाला। केशव इनके आश्रय में भी रहे और उनका पहले का सा ही आदर रहा। केशव ने वीरसिंह देव का यशोगान अपने 'वीरसिंहदेव-चरित' नामक काव्य में किया है।

अन्त में वृद्धावस्था भी आई और केशव ज्ञान-विज्ञान की ओर आकृष्ट हुए। 'विज्ञान-गीता' रचकर उन्होंने वीरसिंहदेव को सुनाई और स्वयं संसार से विरक्त होकर राजकवि पद से अवकाश लेकर गंगा-सेवन के लिए चले गए। केशव का देहान्त कब हुआ इसका कोई निश्चित पता नहीं चलता। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार इनका जन्म संवत् १६१२ में और मृत्यु संवत् १६७४ के आस-पास हुई।

केशवदास का संस्कृत-साहित्य का अध्ययन बहुत ही विस्तृत था और हिन्दी के तो वे उद्भट कवि थे ही। कहा जाता है कि विहारी जैसे लोकप्रिय कला-निपुण कवि भी केशव के शिष्यों में से एक थे। बाबा वेणीमाधवदास ने अपने मूल गोसाईं-चरित में एक ऐसे प्रसंग का वर्णन किया है जिससे पता चलता है कि तुलसीदास जी से भी केशवदास का साक्षात्कार हुआ था। सम्भव है तुलसी की रामायण की प्रतिद्वन्द्विता में ही रामचन्द्रिका की रचना की गई हो केशव में कवि होने तथा राजदरबार में रहने के कारण पूर्ण विदग्धता, विनोदप्रियता तथा रसिकता थी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। वे राम के परम भक्त थे और उनके रामभक्ति विषयक छन्दों में पूर्ण तल्लीनता दिखलाई देती है इसमें भी सन्देह नहीं। कृष्ण को उन्होंने उसी रूप में लिया जो

रूप उन्हें काव्य-परम्परा से प्राप्त था। अतः उन्होंने कृष्ण का वर्णन यदि एक साधारण रसिक के रूप में किया तो इसमें उनका दोष नहीं था। यहाँ परम्परा का प्रभाव था। विज्ञान-गीता की रचना से यह स्पष्ट विदित होता है कि उनके हृदय में जो भक्ति-भावना पहले से ही बद्धमूल थी, उचित अवसर पाते ही उसने उनके हृदय में तीव्र वैराग्य उत्पन्न कर दिया और वे सांसारिक मोह माया से अलग होकर गंगा तट पर भजन करने के लिए चले गये।

केशव के ग्रन्थ

केशव के रचे हुए दस ग्रन्थ बतलाए जाते हैं—रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञानगीता, रतनबावनी, वीरसिंहदेव-चरित, जहाँगीर-जस-चन्द्रिका, नखशिख, रामालङ्कृत-मञ्जरी और छन्दशास्त्र का कोई ग्रन्थ। इनमें से प्रथम सात प्राप्य हैं और अन्तिम तीन का कुछ पता नहीं। कुछ लोगों के अनुसार रामालंकृत-मञ्जरी ही केशव का छन्दशास्त्र का ग्रन्थ था।

इन ग्रन्थों में से कविप्रिया और रसिकप्रिया क्रम से अलङ्कार और रस पर लिखी गई हैं। इन ग्रन्थों में भले ही मौलिक विवेचन न हों और अधिकांश सामग्री संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों से ली गई हो किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इनका अत्यन्त अधिक महत्त्व है। केशव के समय तक हिन्दी में रीति-ग्रन्थों का प्रायः अभाव सा ही था और यह कमी केशव को बहुत अखरी। फलस्वरूप इन ग्रन्थों की रचना हुई। हिन्दी में रीतिविषयक प्रारम्भिक रचनाएँ होने के कारण इन ग्रन्थों में भले ही त्रुटियाँ हों पर हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा में मोड़ने में ये ग्रन्थ अत्यन्त ही समर्थ हुए। इनका खूब प्रचार हुआ और लोग इन्हीं का अध्ययन कर काव्य करना सीखने लगे। इन दोनों ग्रन्थों में काव्य के उपा-

दोनों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन है और इनके उदाहरणों में बड़े ही सुन्दर काव्यत्व के दर्शन होते हैं। ये दोनों ग्रन्थ केशव को हिन्दी साहित्य के आदि आचार्य के पद से विभूषित कराने के लिए पर्याप्त हैं।

जहाँगीर-जस-चन्द्रिका और वीरसिंहदेव-चरित काव्य हैं जो साधारण कोटि के हैं। पहले में जहाँगीर का वर्णन है और दूसरे में इन्द्रजीतसिंह के भाई वीरसिंह का। रतनबावनी एक वीररस-पूर्ण ग्रन्थ है जिसमें इन्द्रजीतसिंह के बड़े भाई रत्नसिंह की वीरता का वर्णन किया है। रत्नसिंह सोलह वर्ष की अवस्था में ही युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गए थे। इसमें वीररस के उपयुक्त छप्पय छन्द का प्रयोग किया गया है और यह केशव की एक सफल रचना है।

विज्ञान-गीता केशव की वृद्धावस्था की लिखी हुई एक शान्त-रस-प्रधान रचना है। इसमें कृष्णमिश्र कृत प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक का थोड़ा बहुत आधार लिया गया है। यह पुस्तक रूपक के रूप में लिखी गई है और इसमें मानसिक भावों का उन्हें मूर्त्त रूप देकर अच्छा उद्‌घाटन किया गया है। इसमें अनेक छन्द बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं।

केशव की सबसे प्रसिद्ध रचना रामचन्द्रिका है जिसमें राम-कथा का विस्तृत वर्णन है। यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य का एक उत्कृष्ट कलापूर्ण महाकाव्य है। प्रस्तुत संग्रह का सम्बन्ध इसी महाकाव्य से है। अतः इसका यहाँ कुछ विस्तार के साथ विवेचन किया जाएगा।

रामचन्द्रिका में महाकाव्यत्व

महाकाव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका में केशव को कहाँ तक सफलता मिली है इस प्रश्न पर विचार करने के पहले हमें यह

जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने महाकाव्य की कौन-कौन सी विशेषताएँ बतलाई हैं और संस्कृत के महाकाव्यों में उनका कहाँ तक पालन हुआ है। केशव के सामने संस्कृत साहित्य के लक्षण तथा लक्ष्य दोनों प्रकार के ग्रन्थ मौजूद थे और उन्हीं के अनुसार केशव ने अपनी रामचन्द्रिका की रचना भी की। किसी कवि की आलोचना करते समय हमें इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि उस कवि के ऊपर किन-किन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है और उसने किस दृष्टिकोण से अपने ग्रन्थ की रचना की है। अपने बनाए हुए आलोचना के नियमों की अनुचित कसौटी पर किसी प्राचीन महान कवि को कसकर उसे असफल बतलाना उचित नहीं।

काव्यादर्श, साहित्यदर्पण इत्यादि लक्षण ग्रन्थों में महाकाव्य के जो लक्षण दिए गए हैं उनका सारांश यह है। महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए और इसकी कथा का ऐतिहासिक आधार न होना चाहिए। इसका उद्देश्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति होना चाहिए। इसका नायक देवता या धीरोदात्त क्षत्रिय होना चाहिए अथवा इसमें एक उच्च वंश के अनेक राजाओं का वर्णन होना चाहिए। महाकाव्य में पूरा विस्तार होना चाहिए और इसमें कम से कम आठ सर्गों का होना आवश्यक है। प्रत्येक सर्ग में सामान्यतया एक ही छन्द होना चाहिए किन्तु अन्त में छन्द का बदलना आवश्यक है। किसी किसी सर्ग में अनेक बदलते हुए छन्दों का भी प्रयोग हो सकता है। महाकाव्य के लिए कुछ वर्णनों से अलंकृत होना आवश्यक है। उसमें नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यान-क्रीड़ा, सलिल-क्रीड़ा, मन्त्रणा, रणप्रमाण, नायकाभ्युदय इत्यादि का सुन्दर वर्णन होना चाहिए। महाकाव्य का प्रधान रस शृङ्गार वीर तथा शान्त में से कोई एक

हो सकता है। अन्त में महाकाव्य की शैली अत्यन्त अलंकृत तथा रसभावपूर्ण होनी चाहिए।

इसके अनन्तर यदि हम संस्कृत के प्रसिद्ध महाकाव्य किराता-र्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधचरित इत्यादि पर दृष्टि डालते हैं तो इनमें भी इन्हीं उपर्युक्त नियमों का पूर्ण रूप से अनुसरण पाते हैं।

केशव के सामने ये दोनों प्रकार के लक्षण और लक्ष्य ग्रन्थ मौजूद थे और वे इन नियमों से पूर्ण परिचित थे। रामचन्द्रिका में इन सब नियमों का पूर्ण रूप से पालन किया गया है। इसकी कथा का आधार वाल्मीकि रामायण है। राम जैसे धीरोदात्त मर्यादा पुरुषोत्तम इसके नायक हैं। इसमें आठ से अधिक सर्ग भी हैं जिनका नाम केशव ने प्रकाश रखा है। इसका आकार संक्षिप्त नहीं है। छन्दों के प्रयोग में अवश्य केशव ने अधिक स्वतन्त्रता से काम लिया है और अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों की विविधता के कारण रामचन्द्रिका में कोई त्रुटि नहीं आने पाई है प्रत्युत एक अपूर्व सौन्दर्य आ गया है और पद-पद पर नूतनता का अनुभव होता है। रामचन्द्रिका में फड़कते हुए सजीव वर्णनों की भरमार है। वाटिका-वर्णन, सूर्योदय वर्णन, वर्षा-वर्णन, शरद्-वर्णन, त्रिवेणी-वर्णन, भारद्वाजाश्रम-वर्णन, युद्ध-वर्णन इत्यादि वर्णनों से रामचन्द्रिका भरी पड़ी है। रामचन्द्रिका में शृङ्गार, वीर और शान्त तीनों रस मिलते हैं और इनका सुन्दर परिपाक हुआ है। जितनी सुन्दर चमत्कारपूर्ण अलंकृत योजना रामचन्द्रिका में दिखलाई देती है उतनी बहुत कम जगहों में है रसों और भावों से सारा ग्रन्थ भरा पड़ा है। सारांश यह है कि महाकाव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका केशव की एक उत्कृष्ट कलापूर्ण रचना है।

कतिपय आधुनिक आलोचकों द्वारा रामचन्द्रिका में महाकाव्य की दृष्टि से कुछ त्रुटियाँ बतलाई गई हैं उन पर भी अब थोड़ा सा

विचार कर लेना चाहिए। कहा गया है कि महाकाव्य में प्रबन्धत्व के लिए कथानक की जंजीर में सब कड़ियों का स्पष्ट दर्शन होना चाहिए और रामचन्द्रिका में इस बात का अभाव है। इसके उत्तर में केवल इतना ही निवेदन किया जा सकता है कि महाकाव्य, जीवन चरित या इतिहास नहीं है जिसमें कथानक के सब विवरणों का रहना आवश्यक है। कवि उन्हीं स्थलों को चुन लेता है जिनमें उसकी वृत्ति रमती है और उन्हीं का क्रमिक वर्णन करता है और इसी क्रमिक वर्णन से प्रबन्धत्व स्वयं आ जाता है। रामचन्द्रिका में केशव ने भी इसी अधिकार का उपयोग किया है अतः उनके ऊपर प्रबन्धाभाव का दोष लगाना उचित नहीं। दूसरी बात यह है कि रामकथा जनता के हृदय में इस दृढ़ता से बद्धमूल है कि यदि कोई कवि रामकाव्य में कुछ विवरणों को छोड़ भी दे तो भी कोई हानि नहीं। पाठक स्वयं सम्बन्ध जोड़ लेता है। कुछ आलोचकों का कथन है कि संवादों की अधिकता के कारण भी रामचन्द्रिका की प्रबन्ध-धारा रुकती-सी दिखलाई देती है। यह कथन तो मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है जैसे कोई कहे कि किनारे पर स्थित मनोहर वृक्षों के कारण नदी की धारा में रुकावट आ जाती है। मेरी समझ में तो फड़कते हुए सजीव संवादों के द्वारा रामचन्द्रिका की प्रबन्ध-धारा में एक अपूर्व मनोहरता आ जाती है, उसमें रुकावट नहीं आती।

अन्य दोष जो इस दृष्टि से रामचन्द्रिका पर लगाया गया है वह यह है कि केशव में कथानक के गम्भीर और मार्मिक स्थलों को पहिचानने की शक्ति नहीं है। यहाँ पर केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि सब की रुचि एक ही समान नहीं होती और इसी कारण मार्मिकता की भी कोई विशेष कसौटी नहीं हो सकती। जो स्थल एक व्यक्ति को अधिक

मार्मिक प्रतीत होते हैं, दूसरे को उतने मार्मिक नहीं प्रतीत होते। और दूसरी बात यह भी है कि रामकथा के जो मार्मिक स्थल इन आलोचकों द्वारा बतलाए गए हैं उनका वाल्मीकि और तुलसी ने पहले ही पूर्ण रूप से चित्रण कर दिया था और शायद केशव पिष्टपेषण करना उचित नहीं समझते थे इसलिए भी उन्होंने उन स्थलों को उतना अधिक विस्तार देना उचित नहीं समझा। अन्य बात यह भी हो सकती है कि रामकथा के ये स्थल प्रायः करुण और शोक से भरे हुए हैं और संस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य में करुण रस की प्रधानता का विधान नहीं किया है अतः केशव ने इस कारण से भी इन स्थलों को चलता हुआ कर दिया है। अस्तु, किसी कवि की आलोचना करते समय हमारे लिए उचित तो यह है कि जो कुछ उसने लिखा है उसी की विशेषताओं का विवेचन करें और उसी के आधार पर उसका मूल्य निर्धारित करें। यदि हम कुछ सहृदयता से काम लेंगे तो रामचन्द्रिका में मार्मिक और गम्भीर स्थलों की कमी भी नहीं दिखलाई देगी। यदि हम केवल रामाश्वमेध प्रकरण को ही ले लें और उसका अच्छी तरह से विश्लेषण करें तो भावुकता, सरसता और कौतूहल का पूर्ण प्रवाह वहाँ दिखलाई पड़ेगा। स्वाभाविक वस्तुवर्णन, स्वभाव-चित्रण और युद्ध-वर्णन सब अपने उत्कृष्ट रूप में दिखलाई पड़ेंगे। रामचन्द्रिका में सीता-स्वयम्वर, परशुराम-संवाद, हनुमान लंक-गमन, अङ्गद-रावण-संवाद, रामरावण-युद्ध प्रकरण इत्यादि अन्य अत्यन्त उत्कृष्ट स्थल हैं जो केशव की अनुभूति और प्रतिभा के पूर्ण परिचायक हैं।

तीसरा दोष जो महाकाव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका पर लगाया गया है वह यह है कि इसमें दृश्यों की स्थानगत विशेषताओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया है और केशव ने प्राकृतिक

दृश्यों के लिए कोई आकर्षण नहीं दिखलाया है। इस कथन के पूर्वार्द्ध के समर्थन में कहा गया है कि केशव विहार प्रान्त में स्थित विश्वामित्र के तपोवन का वर्णन करते हुए कह चलते हैं कि 'एला ललित लवंग संग प्रेमी फल सोहैं' और उन्हें यह पता भी नहीं कि विहार में ये चीजें होती हैं या नहीं। इसके उत्तर में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि आलोचक महोदय ने विश्वामित्र के तपोवन का पूरा वर्णन ध्यान से नहीं पढ़ा। केशव इस बात से भली भाँति परिचित हैं कि विहार में ये चीजें नहीं होतीं किन्तु वे विश्वामित्र जैसे महर्षि के अलौकिक प्रभाव से भी अपरिचित नहीं हैं और वे इसी प्रभाव की व्यञ्जना कराने के लिए उन वस्तुओं को भी उनके तपोवन में लाकर रख देते हैं जो सामान्यतः विहार में अन्यत्र दुर्लभ ही नहीं अलभ्य भी हैं। केशव स्वयं इस वर्णन के अन्त में कहते हैं। 'अति प्रफुलित फुलित सदा रहै केशवदास विचित्र वन।" केशवदास जी स्वयं इस वन को विचित्र तथा अलौकिक समझते हैं। अतः उनकी समझ में इसकी सभी बातें विचित्र हैं। अतः उनके अनुसार इस वन में एला, लवंग इत्यादि का होना भी असंगत नहीं। उपर्युक्त कथन के उत्तरार्द्ध के समर्थन में कहा गया है कि "देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द" कह कर केशव ने अपनी इस मनोवृति का स्पष्ट परिचय दे दिया है कि प्रकृति में उनके लिए कोई आकर्षण नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी भी कथन को अपने प्रकरण से हटाकर जिस तरह चाहे तोड़ा मरोड़ा जा सकता है। यही दशा केशव के उपर्युक्त कथन की भी हुई है। अपने वास्तविक स्थान पर यह केवल अर्थवाद के रूप में है सिद्धान्तवाद के रूप में नहीं। ग्रामीण स्त्रियाँ जानकी के मुख को देखकर उसकी अलौकिकता सिद्ध करने के लिए युक्तियाँ दे रही हैं। उन्हीं युक्तियों में से ऊपर का कथन भी एक है। जब

व्यापक स्वरूप में चमत्कारों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। चन्द्रालोककार जयदेव ने तो यहाँ तक कह डाला है कि:—

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णामनलंकृती॥

जो विद्वान अलङ्काररहित शब्द और अर्थ को काव्य मानता है वह यह क्यों नहीं मानता कि उष्णता-रहित अग्नि भी हो सकती है। केशव ने भी अपनी कविप्रिया में स्पष्ट कहा है:—

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूखन बिनु न बिराजही, कविता बनिता मित्त॥

उच्चकोटि की सुन्दर लक्षणों से युक्त, उपर्युक्त वर्णविन्यास वाली, रसपूर्ण तथा सुन्दर छन्दों में लिखी हुई भी कविता अलंकार विना उसी प्रकार उत्कर्षपूर्ण नहीं दिखलाई देती जिस प्रकार उच्च कुल में उत्पन्न, सब लक्षणों से युक्त, सुन्दर वर्ण वाली लावण्ययुक्त तथा पवित्र आचरण वाली नायिका आभूषणों के विना पूर्ण उत्कर्ष नहीं प्राप्त कर पाती। केशव के इस कथन का अभिप्राय इतना ही है कि काव्योत्कर्ष को बढ़ाने वाले साधनों में अलंकारों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुन्दर अलंकारों के विना कविता उत्कर्ष को नहीं पहुँच सकती। काव्य में रस, गुण, छन्द इत्यादि के साथ-साथ अलंकारों का होना भी आवश्यक है। केशव की आलोचना करते समय हमें केशव के इस दृष्टिकोण को कभी भी नहीं भूलना चाहिये। यदि अलंकारों के उत्कृष्ट विधान के ही कारण कोई आलोचक केशव को हेय तथा निम्नकोटि का कवि समझे तो उसे हम एकांगदर्शी और दुराग्रही न कहें तो क्या कहें। अस्तु अब हम केशव की काव्यगत मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में विश्लेषण करते हुए यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि

केशव की काव्य-कला

महाकवि केशव की आलोचना करते समय हिन्दी के अनेक आलोचकों ने इतनी हृदयहीनता तथा संकीर्णता से काम लिया है कि उनके उच्छृंखल और असंयत विचारों को देखकर सहृदयों के हृदय में विरक्ति की भावना उत्पन्न होने लगती है और जब वे हिन्दी के कुछ लब्ध-प्रतिष्ठ आलोचकों को भी महाकवि केशव के विषय में यह कहते हुए सुनते हैं कि "केशव को कवि हृदय नहीं मिला था", "भाषा भी उनकी काव्योपयोगी नहीं है", "केशव की रचना को सब से अधिक विकृत और अरुचिकर करने वाली वस्तु है अलंकारिक चमत्कार की प्रवृत्ति" इत्यादि तो उन्हें हाथ पर हाथ रख कर चुप हो जाना पड़ता है। इन कथनों से तो स्पष्ट ही विदित होता है कि इन आलोचकों में केशव के प्रति तनिक भी सहृदयता नहीं है और केशव की कविता उनकी चमत्कार-विरुद्ध व्यक्तिगत रुचि के अनुकूल न होने के कारण सर्वथा हेय तथा निम्नकोटि की है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की एकांगदर्शिता आलोचना के क्षेत्र में अनर्थ उपस्थित कर देती है। जब तक आलोचक व्यापक दृष्टि तथा सहृदयता से काम नहीं लेगा उसके निर्णय में भ्रान्त-धारणाओं के समावेश की आशंका रहेगी। केशव के साथ जो कुछ अन्याय हुआ है वह इसी एकांगदर्शिता के कारण और सहृदयता की कमी के कारण।

केशव काव्य में चमत्कार को महत्त्वपूर्ण स्थान देने वाले हैं। और जिन लोगों को चमत्कार से चिढ़ है वे केशव के चमत्कारों पर ही आक्षेप नहीं करते केशव के अन्य भी काव्यगत गुण उन्हें दोष के ही रूप में दिखलाई देने लगते हैं। फलस्वरूप वे केशव की कवित्वशक्ति तक को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते। इसे मैं केवल एकांगदर्शिता और असहृदयता ही कहूँगा। काव्य के

व्यापक स्वरूप में चमत्कारों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। चन्द्रालोककार जयदेव ने तो यहाँ तक कह डाला है कि:—

> अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
> असौ न मन्यते कस्मादनुष्णामनलंकृती॥

जो विद्वान अलङ्काररहित शब्द और अर्थ को काव्य मानता है वह यह क्यों नहीं मानता कि उष्णता-रहित अग्नि भी हो सकती है। केशव ने भी अपनी कविप्रिया में स्पष्ट कहा है:—

> जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
> भूखन बिनु न बिराजही, कविता बनिता मित्त॥

उच्चकोटि की सुन्दर लक्षणों से युक्त, उपर्युक्त वर्णविन्यास वाली, रसपूर्ण तथा सुन्दर छन्दों में लिखी हुई भी कविता अलंकार बिना उसी प्रकार उत्कर्षपूर्ण नहीं दिखलाई देती जिस प्रकार उच्च कुल में उत्पन्न, सब लक्षणों से युक्त, सुन्दर वर्ण वाली लावण्ययुक्त तथा पवित्र आचरण वाली नायिका आभूषणों के बिना पूर्ण उत्कर्ष नहीं प्राप्त कर पाती। केशव के इस कथन का अभिप्राय इतना ही है कि काव्योत्कर्ष को बढ़ाने वाले साधनों में अलंकारों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुन्दर अलंकारों के बिना कविता उत्कर्ष को नहीं पहुँच सकती। काव्य में रस, गुण, छन्द इत्यादि के साथ-साथ अलंकारों का होना भी आवश्यक है। केशव की आलोचना करते समय हमें केशव के इस दृष्टिकोण को कभी भी नहीं भूलना चाहिये। यदि अलंकारों के उत्कृष्ट विधान के ही कारण कोई आलोचक केशव को हेय तथा निम्नकोटि का कवि समझे तो उसे हम एकांगदर्शी और दुराग्रही न कहें तो क्या कहें। अस्तु अब हम केशव की काव्यगत मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में विश्लेषण करते हुए यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि

केशव में उत्कृष्ट चमत्कार विधान के साथ-साथ काव्योत्कर्ष लाने वाले अन्य साधन भी पूर्ण रूप से वर्तमान हैं।

रस-व्यञ्जना

रसव्यञ्जना को सबसे पहले लीजिये। केशव प्रधानतया शृंगारी कवि हैं, शृंगार को उन्होंने रसराज माना है और शृंगार की अनेक परिस्थितियां और उपपरिस्थितियों का बड़ा ही मार्मिक तथा आकर्षक चित्रण किया है। रसिक-प्रिया शृंगार की सरस उक्तियों से भरी पड़ी है। उसमें पूर्वराग, संयोग-वियोग, शृंगार की तीनों दशाओं का बड़ा ही सजीव चित्रण है। कुछ उदाहरण देखिए:—

पूर्वराग

कहूँ बात सुनै सपनेहूँ वियोग की होत कहै दुइ टूक हियो।
मिलि खेलिए जा सहुँ बालक तें कहि तासों अबोल क्यों जात कियो॥
कहिहै कहा केसव नैनन को बिन कानहिं पावक-पुंज पियो।
सखि तू बरजै, अरु लोग हँसैं कहि काहे को प्रेम को नेम लियो॥

संयोग

चंचल न हूजै नाथ, अंचल न खैंचो हाथ,
सोवै नेक सारिकाऊ सुक तौ सोवायो जू।
मंद करौ दीप दुति चंदमुख देखियत,
दारिकै दुराय आऊँ द्वार तौ दिखायो जू॥

मृगज मराल बाल बाहिरै बिडारि देउँ,
भायो तुम्हैं केशव सो मोहूँ मन भावो जू।
छल के निकास ऐसे वचन-विलास सुनि,
सौ गुनो सुरत हू तें स्याम सुख पायो जू॥

वियोग

फूल न दिखाउ, सूल फूलत है हरि बिनु,
दूरि करि माला वाला-व्याल-सी लगति है।
चँवर चलाउ जनि, बीजन हिलाउ मति,
केशव, सुगंध वायु बाइ सी लगति है॥
चन्दन चढ़ाउ जनि, ताप-सी चढ़त तन,
कुंकुम न लाउ अंग, आग सी लगति है।
बार बार बरजति, बावरी है ? वारौं आनि,
बीरी न खवाउ, बीर बिस सी लगति है॥

रसिक प्रिया में जो शृंगार की उमड़ती हुई धारा दिखलाई पड़ती है उसके विषय में कुछ आलोचकों का कथन है कि वह उच्छृंखल है अमर्यादित है और असंयत है। इस सम्बन्ध में यहाँ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि शृंगार के सजीव और स्वाभाविक चित्रण में मर्यादा का पालन हो ही नहीं सकता। इस कथन के समर्थन में केवल विहारी के दो दोहे उद्धृत किये जाते हैं:—

इक भीजे चहले परे बूड़े वहे हजार।
कितो न औगुन जग करत नै वै चढ़ती वार॥
तन्त्री-नाद कवित्त-रस सरस राग रतिरंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग॥

शृंगार की उमड़ती हुई धारा में सारी मर्यादा वह जाती है और उसका कहीं पता भी नहीं चलता। हिन्दी-साहित्य के सूर जैसे महारथी कवि भी शृंगार में मर्यादा का पालन न कर सके। संस्कृत साहित्य के दार्शनिक कवि भवभूति भी शृंगार रस के चित्रण में मर्यादा का पालन नहीं कर सके। शृंगार के सर्वोत्कृष्ट आसन पर विराजमान कालिदास की क्या कहें ? उन्होंने इस

मर्यादा की ओर उल्टी आँख से भी नहीं देखा। विश्व के किसी भी श्रृंगार-साहित्य को देखिए। उसमें कहीं भी मर्यादा का कड़ा बन्धन नहीं दिखलाई पड़ेगा। तब केशव के ऊपर ही इतनी सख्ती क्यों और उसकी ही इतनी तीव्र अनुचित आलोचना क्यों ?

यदि कहा जाय कि रामायण में तुलसी ने मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है तो यह भी कहा जा सकता है कि—रामचन्द्रिका में केशव ने भी सर्वत्र ही मर्यादा का पालन किया है और तुलसी के समान ही उनका श्रृंगार भी पूर्ण संयत है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम का श्रृंगार भी मर्यादित ही होना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं और इसी कारण से रामचन्द्रिका तथा रामायण का श्रृंगार पूर्ण मर्यादित है। मर्यादा के उल्लंघन के भय से ही रामचन्द्रिका में केशव ने राम-जानकी के श्रृंगार का विस्तृत वर्णन नहीं किया है और केवल उनकी वियोग दशा का ही अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया है जो बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। देखिए—

जानकी-वियोग-वर्णन

धरे एक बेनी मिली मैल सारी
मृणाली मनौं पंक सौं काढ़ि डारी।
सदा रामनामै रटै दीन बानी,
चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी॥
ग्रसी बुद्धि सी चित्त चिंतानि मानौं,
किधौं जीभ दंतावली मैं बखानौं।
किधौं घेरि के राहु-नारीन लीनी,
कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनी॥

राम-वियोग-वर्णन

दीरघ दरीन बसैं केसौदास केसरी ज्यौं,
केसरी कौं देखि बनकरी ज्यौं कँपत है।

वासर की संपति उलूक ज्यौं न चितवत,
चकवा ज्यौं चन्द चितै चौगुनो चँपत है।
केका सुनि व्याल ज्यौं बिलात जात घनश्याम,
घनन की घोरनि जवासो ज्यौं तपत हैं।
भौंर ज्यों भँवत वन, योगी ज्यौं जगत रैनि,
साकत ज्यौं राम नाम तेसेई जपत हैं॥

इन उपर्युक्त छन्दों में जानकी तथा राम की विरह-वेदना की पूर्ण तीव्रता तथा प्रेम की अपूर्व अनन्यता व्यञ्जित है। भावुकता के साथ-साथ कल्पना का भी सुन्दर सामञ्जस्य है।

शृङ्गार के अनन्तर केशव का प्रधान रस वीर ही है और इसके चित्रण में केशव को अपूर्व सफलता मिली है। रतनबावनी में इसकी उत्कृष्ट व्यञ्जना के लिए छप्पय छन्दों का और कर्कश वर्णों का आश्रय लिया गया है; किन्तु रामचन्द्रिका में कहीं-कहीं तो इन दोनों साधनों का आश्रय लिया गया है किन्तु कहीं-कहीं इनके अभाव में भी सामान्य छन्दों और सामान्य भाषा द्वारा ही इस रस की अत्यन्त सजीव व्यञ्जना कराई गई है। रामचन्द्रिका में रावण-युद्ध और लवकुश-युद्ध ये ही दो युद्ध के अवसर हैं और इन दोनों को केशव ने बहुत फड़कता हुआ वर्णन किया है। इन दोनों में भी लवकुश-युद्ध का चित्रण अधिक ओजस्वी और मार्मिक हुआ है। रामचन्द्र की भयङ्कर विशाल विश्वविजयिनी सेना को ललकारते हुए लव और कुश जैसे दो बालकों को देखकर हृदय वीरोल्लास से भर जाता है। इसके अनन्तर युद्ध का अत्यन्त भयङ्कर दृश्य सामने आ उपस्थित होता है। देखिए:—

अति रोप रसे कुश केसव श्रीरघुनायक सों रणरीति रचैं।
तेहि बार न बार भई बहु बारन स्वर्ग हनै न गनै विरचैं॥
तहँ कुंभ फटैं गजमोती कटैं ते चलै बहु शोणित रोचि रचैं।
परिपूरण पूर पनारन तैं जनु पीक कपूरन की किरचैं॥

इसके अनन्तर युद्ध का नदी के साथ साँग रूपक बाँधकर जो वर्णन है वह बहुत ही उपयुक्त है। देखिए:—

पुञ्ज कुञ्जर शुभ्र स्यन्दन शोभिजे सुठि सूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीसनि पेलि सोनित पूर॥
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म विसाल।
चक्र से रथचक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल॥

इसके अनन्तर समर का रूपक सिन्धु से भी बाँधा गया है और वह भी अत्यन्त उपयुक्त हुआ है। देखिए:—

सोनित सलिल नर बानर सलिलचर,
गिरि बालिसुत, विष विभीषन डारे हैं।
चमर पताका बड़ी बड़वा अनल सम,
रोगरिपु जामवन्त केशव विचारे हैं॥
बाजि सुरबाजि, सुरगज से अनेक गज,
भरत सबन्धु इन्दु अमृत निहारे हैं।
सोहत सहित शेष रामचन्द्र केशव से,
जीति के समरसिन्धु साँचे हू सँवारे हैं॥

जिस समय वाल्मीकि समरक्षेत्र में जाते हैं और उपर्युक्त भयङ्कर दृश्य को देखते हैं, चकित और त्रस्त हो उठते हैं।

केकर कर, बाहु मीन, गयन्द सुंड भुजंग।
चीर चौर सुदेस केस सिवाल जानि सुरंग॥
बालुका बहु भाँति हैं मुनि माल जाल प्रकास।
पैरि दार भए ते द्वै मुनिबाल केसवदास॥
नामवरण लघु वेष लघु, कहत रीझि हनुमन्त।
इतो बड़ो विक्रम कियो, जीते युद्ध अनन्त॥

वीर के ही समान रौद्र की भी सफल व्यञ्जना में केशवदास सिद्धहस्त हैं। रामचन्द्रिका में इस रस के अनेक सुन्दर उदा-

हरण मिलते हैं। जिस समय परशुराम विश्वामित्र के ऊपर तिरस्कारपूर्ण शब्दों में आक्षेप करते हैं शान्त प्रकृति के राम भी गुरु के प्रति अपमानपूर्ण बातों को सुनकर सात्विक क्रोध से तिलमिला उठते हैं और कह उठते हैं:—

भगन भयो हर-धनुष साल तुमको अब सालै।
बृथा होइ विधि-सृष्टि इस आसन ते चालै॥
सकल लोक संहरहु सेस सिर ते धर डारैं।
सप्तसिन्धु मिलि जाहिं होहिं सब ही तम भारैं॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केसव बुड़ि जाहि बरु।
भृगुनन्द सँभारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त शरु॥

राम का ऐसा ही क्रोध एक बार उस अवसर पर दिखलाई देता है जब लक्ष्मण को शक्ति लगती है। विभीषण कहते हैं कि जब सूर्योदय हो जायगा तब लक्ष्मण के जीने की आशा नहीं रह जायगी। इस भावी आशङ्का की बात मन में आते ही राम क्रोध-विह्वल हो जाते हैं और कह उठते हैं कि यदि सूर्य ने ऐसा किया तो सारे देवताओं को राक्षसों के हाथ में समर्पित कर दूँगा और सारे विश्व में असुरों का राज्य फिर से स्थापित कर दूँगा। देखिए:—

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जग करौं अष्ट वसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु॥
बलित अबेर कुबेर बलिहिं गहि देउँ इन्द्र अब।
विद्याधरन अविद्य करौं, बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
निज होइ दासि दिति की अदिति, अनिल अनल मिटि जाइ जल।
सुनि सूरज सूरज उदित ही करौं असुर संसार बल॥

क्रोध का एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण उस समय मिलता है जब रावण जानकी से अपनी पत्नी हो जाने का प्रस्ताव करता है और वे सात्विक क्रोध के आवेश में कह उठती हैं:—

अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी।
खल खर सर धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी॥
चिड़-कन घन घूरे भच्छि क्यों बाज जीवै।
सिव सिर ससि-श्री को राहु कैसे सो छीवै॥
उठि उठि सठ ह्याँ ते भागु तौ लौं अभागे।
मम बचन बिसर्पी सर्प जो लौं न लागे॥
बिकल सकुल देखौं आसु ही नाश तेरो।
निहट मृतक तोकौं रोप मारै न मेरो॥

करुण का विस्तृत तथा प्रभावपूर्ण चित्रण केशव में नहीं मिलता। रामकथा में करुण से भरे हुए अनेक स्थल हैं किन्तु केशव ने इन स्थलों पर प्रायः भाषा की व्यञ्जना-शक्ति से ही काम लिया है और उनके विस्तृत वर्णन का प्रयत्न नहीं किया है। इसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि इन स्थलों का वर्णन वाल्मीकि तथा तुलसी दोनों ही इतने विस्तार के साथ कर चुके थे कि उनमें नवीनता के लिए गुञ्जाइश ही नहीं रह गई थी और केशव ने उनका फिर विस्तार करके पिष्ट-पेषण करना उचित नहीं समझा। इसका अन्य कारण यह भी हो सकता है कि केशव विनोदशील व्यक्ति थे और कारुणिक दृश्यों के वर्णन में उनकी वृत्ति अधिक नहीं रमती थी। इतना होने पर भी केशव में करुण के कुछ सुन्दर चित्र देखने को मिलते हैं।

लक्ष्मण की मूर्च्छा के अवसर पर राम का यह शोक कितना गम्भीर तथा स्वाभाविक है:—

लक्ष्मन राम जहीं अवलोक्यो।
नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो॥
बारक लक्ष्मन मोहिं बिलोको।
मोकहँ प्रान चले तजि रोको॥

हौं सुमिरौं गुन केतिक तेरे।
सोदर पुत्र सहायक मेरे॥
लोचन बाहु तुही धनु मेरो।
तू बल विक्रम वारक हेरो॥

मेघनाद की मृत्यु के बाद रावण के ये उद्‌गार भी द्रष्टव्य हैं:—

आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल,
चन्द आनन्दमय त्रास जग को हरौ।
गान किन्नर करो नृत्य गंधर्व कुल,
जच्छ विधि लच्छ जच्छ कर्दम धरौ।
ब्रह्म रुद्रादि हैं देव त्रयलोक के,
राज को जाइ अभिसेक इन्द्रहि करौ।
आजु सिय राम दै लंक कुल-दूखनहिं,
जग्य को जाइ सर्वग्य विप्रन बरौ॥

इन पंक्तियों में शोक तथा विरक्ति की कितनी गहरी व्यञ्जना है ?

विज्ञानगीता तथा रामचन्द्रिका दोनों में शान्तरस के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। विज्ञानगीता तो शान्तरस-प्रधान ग्रन्थ ही है और रामचन्द्रिका में राज्यश्री-निन्दा प्रकरण में शान्त की सुन्दर व्यञ्जना हुई है।

वृद्धावस्था की विवशता तथा दुराशा का कितना सजीव और सुन्दर चित्रण निम्नाङ्कित पंक्तियों में किया गया है:—

काँपै उर बानि डगै बर डीठि त्वचाऽति कुचै सकुचै मति बेली।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालक ते सँग ही सँग खेली॥
लिये सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देहदशा जिय साथ रहै दुरि दौरि दुराश अकेली॥
दिन ही दिन बाढ़त जाय हिये जरि जाय समूल सो औषधि खैहै।
किधौं याहि के साथ अनाथ ज्यों केशव आवत जात सदा दुख सैहै।

जग जाकी तू ज्योति जगै जड़ जीव रे कैसहुँ तामहँ जान न पैहै।
सुनि बालदशा गई ज्वानी गई जरि जैहै जराइ दुराशा न जैहै॥

हास्य, अद्भुत, भयानक तथा वीभत्स के भी यत्र तत्र केशव में अच्छे उदाहरण मिलते हैं किन्तु ये रस केशव में अप्रधान ही रहे हैं और उन्होंने इनका विस्तृत चित्रण नहीं किया है।

रसों और भावों के उपर्युक्त विश्लेषण के अनन्तर हम यह निर्विवाद कह सकते हैं कि केशव में पूर्ण भावुकता थी और रस व्यञ्जना में उन्हें पूरी सफलता मिली है। उन्हें हृदयहीन कहना उनके प्रति घोर अन्याय करना है और अपनी हृदयहीनता का परिचय देना है।

चित्रोपम वर्णन

नाटकों में प्रत्यक्षानुभूति की जो सजीवता निपुण अभिनय के द्वारा आती है वही सजीवता महाकाव्यों में सरस सजीव फड़कते हुए वर्णनों द्वारा आती है। यही कारण है कि महाकाव्यों में उत्कृष्ट वर्णनों की प्रचुरता का विधान किया गया है। केशव काव्य में, विशेषकर रामचन्द्रिका में ऐसे वर्णनों का बाहुल्य है और केशव में अपूर्व वर्णन-शक्ति दिखलाई देती है। ये वर्णन कहीं कहीं तो इतने उपयुक्त और मार्मिक ही हुए हैं. पाठक की मानसिक दृष्टि के सामने चित्र-सा उपस्थित कर देते हैं और वह उनमें चित्रोपमता का विशिष्ट गुण स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाता है। सुन्दर पद-विन्यास उपयुक्त प्रवाहपूर्ण छन्दो-योजना तथा कल्पना का सुन्दर समावेश चित्रोपमता में और अधिक उत्कर्ष ला देते हैं। इन वर्णनों में यदि उमंग में आकर कवि कहीं-कहीं परिमिति अथवा मर्यादा का उल्लंघन भी कर गया है तो हम उसे दोषी नहीं ठहरा सकते। यदि उसने दृश्यों की स्थान-गत विशेषताओं की ओर भी कहीं-कहीं ध्यान नहीं दिया है तब भी उसे दोष देना

उचित नहीं। काव्य-परम्परा में बहुत कम कवियों का ध्यान इन छोटी मोटी बाहरी बातों पर गया है और कल्पना की उमंग में इस वैज्ञानिक यथार्थता पर उन्होंने कम ध्यान दिया है। अतः इन छोटी-मोटी बातों को ही काव्य का सर्वस्व मानकर केशव की तीव्र आलोचना करना उचित नहीं।

केशव की रामचन्द्रिका में उत्कृष्ट, सजीव तथा फड़कते हुए वर्णन भरे पड़े हैं। इनके हम प्रधानतः दो भेद कर सकते हैं। पात्र-स्वरूप-वर्णन तथा परिस्थिति-वर्णन। पहले हमपात्र-स्वरूप-वर्णन को लेते हैं। निम्नाङ्कित छन्द में परशुराम के स्वरूप का कितना चित्रोपम वर्णन है:—

कुस-मुद्रिका समिधैं स्रुवा कुस औ कमण्डल को लिए।
करमूल सर धनु तर्कसी भृगुलात सी दरसै हिए॥
धनु बाण तिच्छ कुठार केशव मेखला मृग चर्म सों।
रघुवीर को यह देखिए रसवीर सात्विक धर्म सों॥

इसी प्रकार वृद्धा अनुरूपा का यह वर्णन कितना उपयुक्त हुआ है:—

सिर सेत विराजे कीरति राजै जनु केशव तपबल की।
तनु वलित-पलित जनु सकल वासना निकलि गई थल-थल की॥
कांपति सुभ ग्रीवा सब अँग सींवा देखत चित्र भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेसति या जग में कछु नाहीं॥

रूप वर्णन भी केशव ने अच्छा किया है। राम का नखशिख-वर्णन, सीता-मुख-वर्णन, सीता की सखियों का नखशिख वर्णन इस सम्बन्ध में उल्लेख योग्य हैं। निम्नांकित छन्द में जानकी के अलौकिक तथा अप्रतिम सौन्दर्य की कितनी अच्छी व्यञ्जना है:—

एक कहैं अमल कमल मुख सीता जू को,
एक कहैं चन्द्र-सम आनन्द को कन्द री।

होइ जौ कमल तौ रयनि में न सकुचै री.
चन्द जो तौ वासर न होइ द्युति मंद री ॥
वासर ही कमल रजनि ही में चन्द्र मुख,
वासर हू रजनि विराजै जगदम्ब री।
देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द,
तातें मुख मुखै सखि कमलौ न चन्द री ॥
को है दमयन्ती इन्दुमती रति रातिदिन,
होहिं न छबीली छवि इन जो सिंगारिये।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप,
जातरूप बापुरो विरूप सो निहारिये ॥
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चन्द बहुरूप अनुरूप कै विचारिये।
सीता जी के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही के रूपक तो वारि-वारि डारिये ॥

इसके अनन्तर हम केशव के परिस्थिति-चित्रण पर कुछ विचार करेंगे। परिस्थिति-चित्रण के भीतर प्रकृति वर्णन और अन्यान्य वस्तुओं तथा व्यापारों का वर्णन भी आ जाता है। रामचन्द्रिका के प्रथम प्रकाश में अयोध्या और उसकी वाटिकाओं का वर्णन, तृतीय प्रकाश में तपोवन का वर्णन, पञ्चम प्रकाश में सूर्योदय का वर्णन, ग्यारहवें के प्रकाश में पंचवटी-वन-वर्णन, तेरहवें प्रकाश में वर्षा-वर्णन, शरद-वर्णन, मुद्रिका-वर्णन, बीसवें प्रकाश में त्रिवेणी-वर्णन, भारद्वाजाश्रम-वर्णन, तीसवें प्रकाश में प्रभात-वर्णन, वसंत-वर्णन, चन्द्र-वर्णन, पैंतीसवें में सेना-वर्णन, युद्ध-वर्णन इत्यादि वर्णन देखने योग्य हैं। निम्नाङ्कित पंक्तियों में उदीयमान अरुणिमामय सूर्य का कितना सुन्दर चित्रण हुआ है—

अरुण गात अति प्रात पद्मिनी-प्राननाथ भय।
मानहु केशवदास कोकनँद कोक प्रेममय ॥

परिपूरन सिन्दूर पूर कैधों मंगल घट ।
किधों शक्र को छत्र मढ्यो मानिक-मयूख पर ॥
कै सोनित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को ।
यह ललित लाल कैधों लसत दिग्-भामिनि के भाल को ॥

इस छन्द की पञ्चम पंक्ति को लेकर आलोचकों ने केशव की बड़ी तीव्र आलोचना की है और एक आलोचक के अनुसार तो इसके कारण सारा गुड़ गोबर हो गया है। इसके उत्तर में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इन आलोचकों ने इस छन्द के वास्तविक प्रकरण पर विचार नहीं किया। इस प्रकरण में कवि सूर्य के सुन्दर तथा भयङ्कर दोनों पक्षों को हमारे सामने रखना चाहता है। इसीलिए कुछ पंक्तियों में वह सूर्य के सौन्दर्य की व्यञ्जना कराने वाले उपमानों को लाता है और अन्त में उसकी भयङ्करता सूचित करने के लिए उसकी तुलना कालरूपी कापालिप के शोणित भरे घट से करता है। इस छन्द के ठीक पहले कवि यह स्पष्ट कह चुका है कि:—

कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मन के अनुराग भरे ॥
चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसे। चोर चकोर चिता सी लसै ॥

इससे यह सर्वथा स्पष्ट है कि केशव सूर्य को सुन्दर और भयङ्कर दोनों बतलाना चाहते हैं। इस दशा में यदि कोई ऊपर वाले छन्द में वे मेल भावना का दर्शन करे और केशव के ऊपर दोषारोपण करे तो उसकी आलोचना को हम द्वेष-प्रेरित न कहें तो क्या कहें।

पंचवटी का निम्नांकित वर्णन देखियेः—

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहे जहँ एक घटी ।
निघटी रुचि मीच घटीहूँ घटी जग जीव यतीन की छूटी तटी ॥
अघ-ओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी ।
चहुँ ओरनि नाचत मुक्ति नटी गुण धूरजटी वन पंचवटी ॥

इसमें पंचवटी के पवित्र पावन प्रभात की कितनी सुन्दर व्यञ्जना है। यमक अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा की कैसी सुन्दर छटा है। वर्ण मैत्री तथा शब्द मैत्री की कितनी सुन्दर योजना है। दंडकवन के निम्नांकित वर्णन पर भी थोड़ा-सा विचार कर लेना चाहिए:—

शोभत दण्डक की रुचि वनी। भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी॥
सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरिभाग्य जहँ वसै॥
वैर भयानक सी अति लगे। अर्क-समूह जहाँ जगमगे॥
नैनन को वहु रूपन ग्रसै। श्री हरि की जनु मूरति लसै॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रकृति वर्णन की यह शब्द-साम्य-प्रधान पद्धति काव्य-परम्परा में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी और केशव भी इस पद्धति पर अपने कुछ वर्णन लिखने के प्रलोभन को रोक नहीं सके। ऐसे वर्णनों में हमें यही देखना है कि इन्हें अपनाने में केशव को कहाँ तक सफलता मिली है। यदि इस दृष्टि से हम इस वर्णन को देखते हैं तो इसमें गुण ही गुण दिखलाई देते हैं। चित्रण की दृष्टि से इसमें वन के रम्य तथा भयङ्कर दोनों पक्षों की व्यञ्जना दिखलाई देती है। चमत्कार की दृष्टि से इसमें श्लेष की छटा के साथ-साथ मुद्रालङ्कार की भी छटा दृष्टिगोचर होती है। उपर्युक्त छन्द का यदि हम सहृदयता से अर्थ करें तो यही होगा कि यह दण्डक वन भिन्न-भिन्न प्रकार से आकर्षक तथा घना है। यह बड़े राजा की सेवा के समान सुशोभित होता है; जैसे राजा की सेवा से श्रीफल (धन) की प्राप्ति होती है वैसे ही इस वन में भी श्रीफल (बेल) के सुन्दर फल हैं। फिर यह वन प्रलयवर्णी के समान भयंकर दिखलाई देता है; जैसे प्रलय वेला में सूर्य-समूह प्रकाशित हो जाता है उसी प्रकार से यहाँ अकवे के रूखे-सूखे सफेद पुष्प प्रकाशित हो रहे हैं और इसे भयङ्कर बना रहे हैं। इस प्रकार यह वन नेत्रों को अनेक प्रकार से आकृष्ट कर रहा है; कहीं भयंकर दिखलाई दे

रहा है और कहीं सुन्दर। इसकी वही दशा है जो ईश्वर के विराट रूप की होती है जिसमें भयंकर तथा रम्य दोनों प्रकार के दृश्य दिखलाई देते हैं।

यदि कोई आलोचक दण्डकवन में केवल रमणीयता की कल्पना करके उसके भयंकर पक्ष के समावेत्ताओं में भेल समझे और केशव की आलोचना करे तो इसमें केशव का कुछ भी दोष नहीं। भवभूति जैसे प्रकृति-प्रेमी कवि भी इस दण्डक वन के वर्णन करते समय उसकी भीषणता को नहीं भुला सके और उन्होंने भी यही कहकर उसका वर्णन किया है कि कहीं तो वह स्निग्ध और श्यामल है और कहीं भीषण और रूक्ष (स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः)। यदि केशव ने भी इस वन की रमणीयता का वर्णन करते हुए इसकी भयङ्करता की ओर संकेत कर दिया तो क्या आपत्ति आ गई?

वर्षा का निम्नलिखित वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर हुआ है:—

भौहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोहि तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा शशी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है॥
केशौदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है।
अंबर-बलित मति मोहै नीलकंठजू की,
कालिका की बरखा हरखि हिय आई है॥

इस छन्द में प्रवाह भी है, निरीक्षण भी है और कल्पना का सुन्दर समावेश भी।

इस छन्द को लेकर भी केशव की तीव्र आलोचना की गई है और एक आलोचक का कथन है कि केशव के सामने वर्षा काली का भयङ्कर रूप लाती है। यहाँ भी आलोचक महोदय ने इस

छन्द के प्रकरण की ओर ध्यान नहीं दिया। यह उक्ति विरहोन्मत्त राम की है। विरही के लिए सम्पूर्ण कवि-परम्परा ने वर्षा को अत्यन्त उद्दीपक और भयंकर माना है और यदि केशव ने भी ऐसा ही किया तो क्या अपराध किया?

पंपासर का निम्नांकित वर्णन भी बड़ा ही सुन्दर तथा चमत्कार पूर्ण हुआ है:—

मिलि चक्रिन चन्दन-वात वहै अति मोहत न्यायन ही मति को।
मृगमित्र विलोकत चित्त जरै लिए चन्द्र निशाचर पद्धति को॥
प्रतिकूल शुकादिक होहिं सबै जिय जानैं नहीं इनकी गति को।
दुख देय तड़ाग तुम्हैं न बनै कमलाकर हूँ कमलापति को॥

भारद्वाज के आश्रम का निम्नाङ्कित वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण होने पर भी अत्यन्त सुन्दर है और आश्रम की सुन्दर व्यञ्जना कर रहा है:—

केसौदास मृगज बछेरु चोषैं बाघनी,
चाटत सुरभि बाघ बालक बदन है।
सिंहन की सटा ऐंचें कलभ करनि करि,
सिंहन को आसन गयन्द को रदन है॥
फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
वानर फिरत डोरे डोरे अन्ध तापसन,
ऋषि को समाज कैधों सिव को सदन है॥

अन्त में हम निर्विवाद यह कह सकते हैं कि केशव में सजीव फड़कते हुए चमत्कारपूर्ण वर्णनों की प्रचुरता है। यह दूसरी बात है कि आधुनिक ढंग के स्वतन्त्र संश्लिष्ट प्राकृतिक चित्रण केशव में नहीं मिलते। कहने की आवश्यकता नही कि इस ढंग के चित्रण हिन्दी के प्राचीन कवियों में से किसी में भी नहीं

मिलते और संस्कृत कवियों के विषय में भी प्रायः यही बात कही जा सकती है यदि कालिदास, भवभूति इत्यादि दो एक को अपवाद स्वरूप लें।

(१) अलङ्कार-योजना

केशव का अलङ्कारों के ऊपर पूर्ण अधिकार दिखलाई देता है। उनकी कल्पना-शक्ति बड़ी ही तीव्र और प्रौढ़ है। 'कवयः क्रान्तदर्शिनः' अथवा 'जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि' वाली कहावत केशव पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। अलङ्कारों की उत्कृष्ट योजना में केशव सिद्धहस्त हैं। कल्पना की सुन्दर उड़ानें केशव में पग-पग पर दिखलाई देती हैं। रामचन्द्रिका अलङ्कारों के उत्कृष्ट उदाहरणों से भरी पड़ी है। बड़ी ही निपुणता के साथ एक-एक छन्द में अनेक अलङ्कारों का सन्निवेष किया हुआ दिखाई पड़ता है। /चमत्कार-विधान की सजीव फड़कती हुई छटा हठात् पाठक को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस कवि में चमत्कार-विधान की प्रवृत्ति इतनी अधिक प्रबल होगी उसमें कहीं-कहीं औचित्य की उचित सीमा का भी कुछ न कुछ उल्लंघन अवश्य ही हो जाएगा। केशव के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। किन्तु इतना होने पर भी हम केशव की प्रबल प्रतिभा के प्रवाह में इतने बह जाते हैं कि केशव के इन छोटे-मोटे दोषों की ओर हमारी दृष्टि ही नहीं जाती। जो केवल दोष-दर्शन की भावना से ही प्रेरित होकर केशव का अध्ययन प्रारम्भ करते हैं उनकी बात और ही है। उन्हें तो कल्पना की सुन्दर उड़ानें बेपर की उड़ानों के रूप में दिखलाई देती हैं। और अलङ्कारिक चमत्कार काव्य को विकृत और अरुचिकर करने वाले प्रतीत होते हैं। यहाँ केवल इतना कहा जा सकता है कि यदि काव्य के राज्य में कल्पना-महारानी

का इस प्रकार तिरस्कार होने लगे तो उसके भविष्य के विषय में सहृदयों को अवश्य ही सन्देह होने लगेगा। अस्तु अब हम केशव के कुछ मुख्य अलङ्कारों पर थोड़ा विचार प्रायः करेंगे।

केशव के मुख्य अलङ्कार उत्प्रेक्षा और सन्देह हैं। केशव एक दृश्य को लेकर उत्प्रेक्षा और सन्देह की लड़ी-सी बाँध देते हैं। इन अलङ्कारों की सफल योजना के कारण केशव के वर्णनों में चमत्कार के साथ-साथ अत्यन्त अधिक सजीवता भी आ जाती है। ऐसे वर्णनों से रामचन्द्रिका भरी पड़ी है। दशरथ के प्रसाद पर फहराती हुई ध्वजा का वर्णन सूर्योदय-वर्णन वनमार्ग में स्थित राम-जानकी-लक्ष्मण वर्णन, रावण के हाथ में पड़ी हुई जानकी का वर्णन, वर्षा-ऋतु-वर्णन, हनुमान-लंका-प्रस्थान-वर्णन, अग्निदाह के समय लंका वर्णन, जानकी की अग्नि-परीक्षा वर्णन, रावण की चतुरंगिणी सेना का वर्णन इत्यादि इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं। दो एक उदाहरण देखिए:—

(१) धूमपूर के निकेत मानो धूमकेतु की
  शिखा की धूमयोनि, मध्य रेखा सुधा धाम की।
 चित्र की सी पुत्रिका की रूरे बगरूरे माँहि,
  सबर छोड़ाइ लई कामिनी कि काम की।
 पाखंड की श्रद्धा कि मठेश वश एकादसी
  लीन्हीं है स्वपचराज साखा शुद्ध साम की।
 केशव अदृष्ट साथ जीव जाति जैसी तैसी
  लंकनाथ हाथ परी छाया-जाया-राम की॥

(२) धरे एक वेनी मिली मैल सारी।
 मृणाली मनो पंक सों काढ़ि डारी॥
 सदा राम नामै रटै दीन वानी।
 चहूँ ओर है एक सी दुःखदानी॥

असी बुद्धि सी चित्त-चिन्तानि मानौं।
किधौं जीभ दंतावली में बखानौं॥

किधौं घोरि के राहु नारीन लीनी।
कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनी॥

(३) भौहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोहि तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी को नैन
अमल कमल दल दलित निकाई है॥
केसौदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है॥
अंबर-बलित मति मोहै नीलकण्ठ जू की,
कालिका की बरखा हरखि हिय आई है॥

(४) हरि कैसो वाहन कि विधि कैसो हेम हँस,
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक कों।
तेज को निधान राम मुद्रिका-विमान कैधौं,
लच्छण को बाण छूट्यो रावण निशंक कों।
गिरिगजगंड तें उड़ान्यो सुवरन अलि,
सीता पद पंकज सदा कलंक रंक को।
हवाई सी छूटी केसोदास आसमान में,
कमाल कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक कों॥

श्लेष और उपमा के उदाहरणों से तो सारी रामचन्द्रिका भरी पड़ी है। किसी भी पृष्ठ पर इनके सुन्दर उदाहरण मिल सकते हैं।

उत्प्रेक्षा, सन्देह, श्लेष और उपमा पश्चात् केशव के प्रिय अलंकार परिसंख्या, विरोधाभास तथा रूपक हैं। इनकी भी रामचन्द्रिका में भरमार है। सहोक्ति, विभावना उल्लेख, प्रतिज्ञाबद्ध

स्वभावोक्ति, उदात्त, अतिशयोक्ति, इत्यादि अलङ्कारों के भी अत्यन्त चमत्कारपूर्ण उदाहरण केशव में मिलते हैं। कुछ उदाहरण देखिये:—

परिसंख्या—

(१) मूलन ही की जहाँ अधोगति केसव गाइय।
हाम-हुतासन -धूम नगर एकै मलिनाइय॥
दुर्गति दुर्गन ही जो कुटिल गति सरितनि ही में।
श्रीफल की अभिलाष प्रगट कलियुग के जीमें॥

(२) अति चञ्चल जहँ चलदलै विधवा बनी न नारि।

विरोधाभास—

(१) विषमय यह गोदावरी, अमृतन के फल देत।
केसव जीवन-हार को, दुख कलेस हरि लेत॥

(२) परदार-प्रिय साधु मन वच काम के।

(३) जदपि भृकुटि रघुनाथ की कुटिल देखि यहि जोति।
तदपि सुरासुर नरन की निरखि सुद्ध गति होति॥

रूपक—

(१) चढ्यो गगन तरु धाइ, दिनकर-वानर अरुण मुख।
कीन्हों झुकि झहराइ, सकल तारका-कुसुम बिनु॥

(२) जेहि जस-परिमल मत्त, चंचरीक-चारन फिरत।
दिसि विदिसनि अनुरत्त, सो तो माल्लिका पीड़ नृप॥

सहोक्ति और अक्रमातिशयोक्ति—

(१) भुव-भारहि संयुत राकस को गण जाइ रसातल में अनुराग्यो।
जग में जयशब्द समेतहि केशव राज विभीषन के सिरजाग्यो॥
मयदानव नन्दिनि के सुख सों मिलिके सियके हियको दुखभाग्यो।
सुरदुन्दुभि सीस गजा सर रामको रावन के सिर साथहिं लाग्यो॥

विभावना—

(१) यद्यपि ईंधन जरि गए अरिगण केसवदास।

तदपि प्रतापानलन के पल पल बढ़त प्रकास ॥

(२) केसव वाकी दसा सुनि हौ
अब आगि बिना अँग अँगनि डाढ़ी ।

प्रतिज्ञावद्ध स्वभावोक्ति—

(१) भगन भयो हर धनुख साल तुमको अब साले ।
वृथा होइ विधि-सृष्टि इस आसन ते चालै ॥
सकल लोक संहरहु सेस सिर ते धर डारैं ।
सप्त सिन्धु मिलि जाहिं होहिं सबही हम भारैं ॥
अति कमल जोति नारायणी कहि केसव बुड़ि जाहि वरु ।
भृगुनन्द सँभार कुठार में कियो सरासन युक्त शरु ॥

(२) करि आदित्यि अदृष्ट नष्ट जम करौं अस्ट वसु ।
रुद्रन बोरि समुद्र, करौं गंधर्व सर्व पसु ॥
बलित अबेर कुबेर बलिहिं गहि देउँ इन्द्र अब ।
विद्याधरन अविद्य करौं, विन सिद्धि सिद्ध सब ॥
निजु होइ दासि दितिकी अदिति, अनिल अनल मिटिजाइ जल ।
सुनि सूरज सूरज उदित ही करौं असुर संसार बल ॥

उदात्त—

(१) पढ़ौ विरञ्चि ! मौन वेद, जीव ! सोर छंडिरे ।
कुबेर ! बेर के कही न यच्छ भीर मंडिरे ॥
दिनेस ! जाइ दूरि बैठु नारदादि संगहीं ।
न बोलु चंद ! मन्द बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं ॥

(२) महा मीचु दासी सदा पाइँ धोवै ।
प्रतीहार ह्वै के कृपा सूर जोवै ॥
दयानाथ लीन्हें रहे छत्र जाको ।
करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको ॥
सका मेघमाला, सिखी पाककारी ।
करैं कोतवाली, महादण्ड धारी ॥

पढ़ै बेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके।
कहा बापुरो सत्रु सुग्रीव ताके॥

अतिशयोक्ति—

(१) सूर-तुरंगन के उरझैं पग तुंग पताकन की पद साजनि।

(२) चलि है क्यों चन्द्र मुखी कुचन के भार भयं।
कचन के भार ही लचकि लंक जात है॥

केशव के अर्थालङ्कारों के विषय में इतना विचार कर लेने के बाद उनके शब्दालङ्कारों की भी थोड़ी चर्चा हो जानी चाहिए। वर्ण मैत्री एवं शब्द मैत्री ये रचना सम्बन्धी दो ऐसे गुण हैं जिनका उत्कृष्ट काव्य में होना अत्यन्त आवश्यक है। इन्हीं दोनों गुणों के फलस्वरूप अनुप्रास, यमक, वीप्सा इत्यादि अलङ्कार उत्पन्न होते हैं जिनके सफल प्रयोग से काव्य में अत्यंन्त रोचकता तथा सजीवता आ जाती है। केशव में ये दोनों गुण प्रायः अपनी पूर्णता पर पहुँचे हुए दिखलाई देते हैं। एक आध उदाहरण देखिए—

(१) सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीच घटी हूँ घटो जग जीव जतान की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरनि नाचति युक्ति नटी गुण धूरजटी वन पंचवटी॥

(२) दीरघ दरीन बसैं केसवदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखि बनकरी ज्यौं कँपत है।
बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चन्द चितै चौगुनो चँपत है।
केका सुनि व्याल ज्यौं बिलात जात घनश्याम,
घनन की घोरनि जवासो ज्यों तपत है।
भौंर ज्यों भँवत वन योगी ज्यों जगत रैनि,
साकत ज्यों राम नाम तेरोई जपत है॥

(३) कहै केसवदास तुम सुनौ राजा रामचन्द्र,
रावरी जबहिं सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसिहिं आस पास,
दिसि दिसि बरषा ज्यों बलनि बलति है!
पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गन,
गजराज मृगराज-राजिनि दलति है।
जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आइ जात,
पुरइनि कैसे पात पुहुमी हलति है॥

(४) नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
शोषि शोषि जल भूरि भूरि थल गाथ की।
केसौदास आस पास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपति सब आपने ही हाथ की।
उन्नत नवाइ नत उन्नत बनाइ भूप,
शत्रुन की जीविकाति मित्रन के हाथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिशि दिशि जीति सेना रघुनाथ की॥

इन उपर्युक्त छन्दों में जो एक प्रकार का विशिष्ट प्रवाह, प्रभाव तथा सौष्ठव दिखलाई देता है वह वर्ण मैत्री और शब्द मैत्री के ही कारण है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषा के इस प्रयोग में वेही कविपुंगव सफल हो सकते हैं जिनका उसके ऊपर पूर्ण अधिकार है। केशव की रामचन्द्रिका में इस प्रकार की रचनाएँ भरी पड़ी हैं।

अब कुछ ऐसे उदाहरण दिए जाते हैं जहाँ एक ही छन्द में प्रत्येक अलंकार दिखलाई पड़ते हैं।

(१) विधि के समान हैं विमानी कृत राज हंस,
विविध विबुधयुत मेरु सो अचल है।

दीपति दिपति अति सातों दीप दीपियत,
दूसरो दिलीप सो सुदच्छिणा को बल है।
सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति,
छनदान-प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दसरथ,
भगीरथ-पथ-गामी गंगा कैसो जल है।

इसमें अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह तथा उल्लेख अलंकारों की संसृष्टि है।

(२) भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराव जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा शशी की, नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है।
केसौदास प्रबल करेनुका-गमन हर,
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है।
अंबर-बलित अति मोहै नील कंठ जू की,
कालिका कि बरखा हरखि हिय आई है।

इसमें अनुप्रास, यमक, श्लेष, प्रतीप, रूपक, निदर्शना तथा सन्देह की संसृष्टि है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस कवि में अलंकारों की इतनी भरमार है उसमें एक-आध त्रुटियों का आ जाना स्वाभाविक ही है। अतः यदि केशव में भी कहीं-कहीं अनौचित्य या परिमित का उल्लंघन दिखलाई पड़े तो वह सर्वथा क्षम्य है। इस प्रकार के दोषों से कालिदास, भवभूति, तुलसी, सूर इत्यादि महान् कवियों में से एक भी सर्वथा वंचित नहीं कहा जा सकता। अब केशव के अलङ्कार सम्बन्धी कुछ दोष देखिए:—

(१) बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत।

यहाँ अनौचित्य दोष बतलाया गया है और कहा गया है

कि राम की तुलना उल्लू के साथ उचित नहीं है। यहाँ पर इतना कहा जा सकता है कि कवि ने राम की तुलना उल्लू से नहीं की है राम के सूर्य की ओर देखने की क्रिया की तुलना उल्लू के सूर्य की ओर न देखने की क्रिया के साथ की गई है जो प्रस्तुत प्रकरण में बहुत ही उपयुक्त दृष्टिगोचर होती है। दूसरी बात यह है कि हिन्दी के उल्लू शब्द के साथ अवश्य घृणा की भावना संलग्न है। संस्कृत के उलूक शब्द के साथ घृणा की ऐसी कोई भी भावना संलग्न नहीं है।

(२) मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चन्द बहुरूप अनुरूप कै विचारिए।
सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हैं
रूप ही के रूपक तो वारि वारि डारिए॥

यहाँ पर यह कहा गया है कि जानकी के रूप के वर्णन करते समय मदन के रूप का उल्लेख करना उचित नहीं। इस विषय में यह कहा जा सकता है कि कवि का यहाँ पर केवल इतना ही अभिप्राय है कि संसार में जितनी भी वस्तुएँ सुन्दर तथा कान्तिपूर्ण मानी गई हैं उन सब का सौन्दर्य जानकी के सौन्दर्य के सामने तुच्छ है। दूसरी बात यह है कि जब सभी के रूप की तुलना सूर्य, चन्द्र, कमल तथा सोने से की जाती है तो मदन के रूप से उसकी तुलना करने में क्या आपत्ति आ गई? केशव ने यहाँ काव्य परम्परा का थोड़ा-सा उल्लंघन अवश्य किया है किन्तु इस उल्लंघन में कोई विशेष अनौचित्य नहीं दिखलाई देता। देवता को संस्कृत के आधार पर केशव स्त्रीलिंग ही मानते हैं।

(३) मखतूल के भूल भुलावत केशव भानु मनौ शनि गोद लिए।

यहाँ पर यह कहा गया है कि यहाँ पर परिमिति की भावना का अभाव दिखलाई देता है। इस विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कवि लोग प्रायः परिमित की भावना की

चिन्ता नहीं किया करते। दूसरी बात यह है कि काव्य में प्रायः व्यञ्जना की प्रधानता होती है शाब्दिक अर्थ की नहीं।

(४) पांडव की प्रतिमा सम देखो, अर्जुन भीम महामति लेखो।

यहाँ पर यह कहा गया है कि अर्जुन से अर्जुन के पेड़ का, भीम से अम्लवेतस का क्या सादृश्य है ? केवल शब्द-साम्य के कारण जो चमत्कार है उसको छोड़ कर यहाँ क्या है ? इस विषय में केवल यही कहा जा सकता है कि केशव का उद्देश्य भी यहाँ शब्द-साम्य के कारण उत्पन्न चमत्कार ही दिखलाना है। इस चमत्कार से अधिक यहाँ कुछ खोजना केशव के प्रति अन्याय करना है या अपने दुराग्रह का परिचय देना है।

दूसरा दोष जो इस छन्द को दृष्टि में रखकर बतलाया गया है वह है कवि में ऐतिहासिक दृष्टि की न्यूनता। कहा गया है कि पांडव पीछे हुए और राम पहले और राम के द्वारा पाण्डवों का वर्णन कराना उचित नहीं। यहाँ पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि केशव राम को पूर्ण ब्रह्म मानते हैं जिन्हें तीनों कालों का पूर्ण ज्ञान है। बालिबध के अवसर पर 'यह सांटो लै कृष्णावतार' ये शब्द भी राम के मुख में रखकर केशव ने इसी बात का परिचय दिया है। प्रस्तुत छन्द में लक्ष्मण के लिए 'महामति' शब्द का प्रयोग भी विचारणीय है। 'महामति' लक्ष्मण के लिए भविष्य की बात समझने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए इसी कारण इस विशेषण का प्रयोग किया गया है।

केशव के अलङ्कार सम्बन्धी दोषों पर इतना विवेचन करने के बाद यह कह देना आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि केशव में दोष दिखलाते समय बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए। जो कवि स्वयं यह कहता है कि—

राजत रंच न दोप-युत, कविता वनिता मित्र।
बुन्दक हाला परत ज्यों गंगाजल अपवित्र॥

उसकी कविता में बड़ी कठिनाई से दोप दिखलाई पड़ सकते हैं।

(४) छन्द-योजना

केशव का छन्दों के ऊपर असाधारण अधिकार है। हिन्दी-साहित्य का दूसरा कोई भी कवि इस दृष्टि से केशव की तुलना नहीं कर सकता। जायसी केवल दोहे चौपाई लिख सकते थे, सूर केवल गीत लिखने में निपुण थे और तुलसी का केवल कुछ गिने हुए छन्दों पर ही अधिकार था। हिन्दी-साहित्य का कोई भी ऐसा अन्य कवि नहीं दिखलाई देता जो इस अधिकार के साथ इतने प्रकार के छन्दों का प्रयोग कर सका हो। जो लोग छन्दों को विविधता के कारण रामचन्द्रिका को 'छन्दों का अजायबघर' कहकर उसकी हँसी उड़ाते हैं वे केशव के साथ अन्याय करते हैं। जब केशव स्वयं रामचन्द्रिका के आरम्भ में कहते हैं कि 'रामचन्द्र की चन्द्रिका वरणत हों। बहु छन्द, और इस प्रकार विविध छन्दों में राम-यशो-वर्णन का उद्देश्य सामने रख कर ही इस ग्रन्थ की रचना का आरम्भ करते हैं तो इस प्रकार की आलोचना किसी भी तरह उचित नहीं कही जा सकती। हमें तो केवल यही देखना चाहिए कि छन्दों की विविधता में केशव को कहाँ तक सफलता मिली है। जब हम इस सहानुभूति के साथ केशव के छन्दों पर दृष्टि डालते हैं तो हम अवश्य ही उनकी एतद्विषयक निपुणता पर चकित हुए बिना नहीं रह सकते। रामचन्द्रिका में छोटे से छोटे और बड़े से बड़े प्रायः सभी प्रकार के छन्दों का प्रयोग मिलता है।

रामचन्द्रिका के आरम्भ में एकाक्षरी से लेकर क्रम से अष्टाक्षरी तक छन्द दिए हुए हैं। मोहनक, सोमराजी, कलहंस, चित्र-

पदा निशिपालिका इत्यादि अन्यत्र प्रायः अप्रयुक्त छन्दों का भी प्रयोग रामचन्द्रिका में मिलता है। दंडक (कवित्त) के भी जग-मोहन अनंग शेखर, मत्तमात्तङ्ग लीला करन आदि अनेक उपभेद रामचन्द्रिका में मिले हैं। बहुत से छन्द ऐसे हैं जो हमें केवल पिंगल ग्रन्थों में ही या यहीं मिलते हैं। कुछ छन्द ऐसे भी हैं जो केशव द्वारा ही निर्मित प्रतीत होते हैं।

केशव के छन्दों की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उनमें पूर्ण प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। उनकी अन्य विशेषता है उनकी भावानुकूलता। यदि सर्वत्र नहीं तो अधिकांश स्थलों पर भावों के अनुसार बदलते हुए छन्दों का प्रयोग रामचन्द्रिका में देखने योग्य हुआ है। रामचन्द्रिका में छन्दों की विविधता उनकी धारावाहिकता तथा भावानुकूलता के कारण वह सजीवता आ जाती है जो अन्यत्र प्रायः दुर्लभ-सी है। छोटे छन्दों का प्रयोग केशव ने प्रायः उन स्थलों पर किया है जहाँ द्रुतगति की आवश्यकता होती है। बड़े छन्दों का प्रयोग प्रायः ऐसे स्थलों में किया गया है जहाँ गम्भीरता तथा ओज की आवश्यकता होती है। गम्भीर तथा शान्त वातावरण की व्यञ्जना के लिए प्रायः कवित्त और सवैयों का प्रयोग किया गया है। वीररस के वर्णन में प्रायः छप्पय, भुजंगप्रयात और वसन्त तिलका का प्रयोग दृष्टि-गोचर होता है। कुछ उदाहरण देखिए:—

(१) राम की वाम जो आनी चोराय सो लंक में मीचुकी वेलि वईजू।
क्यों रण जीतहुगे तिनसों जिनकी धनुरेखि न लाँघि गई जू।
बीस बिसे बलवन्त हुते जु हती दृग केशव रूपरमी जू।
तोरि सरासन संकर को पिय सीय स्वयंवर क्यों न लई जू॥

उपदेश देने के शान्त अवसर पर सवैये का कितना सुन्दर प्रयोग है!

(२) अमल सजल घनश्याम वपु केशवदास
चन्द्रहू ते चारु मुख सुखमा को ग्राम है ।
कोमल कमल दल दीरघ विलोचननि
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है ।
बालक विलोकियत पूरण पुरुष गुन
मेरो मन मोहि यह ऐसो रूप धाम है ।
वैर जिय मानि वामदेव को धनुष तोरो
जानत हों बीस बिसे रामभेस काम है ॥

राम के दर्शन से उत्पन्न परशुराम के हृदय के प्रभाव की कितनी गम्भीर व्यञ्जना इस दंडक छन्द के द्वारा हो रही है ।

(३) भगन भयो हर धनुख साल तुमकों अब सालै ।
वृथा होइ विधि-सृष्टि इस आसन ते चालै ॥
सकल लोक संहरहु सेस सिर ते धर डारैं ।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होहिं सब ही तम भारैं ॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केसव बुड़ि जाहि वरु ।
भृगुनंद सँभार कुठार मैं कियो सरासन युक्त शरु ॥

वीररस की व्यञ्जना के लिए छप्पय छन्द का कितना सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

(४) पढ़ौ विरञ्चि मौन वेद जीव सोर छंडिरे ।
कुबेर बेर कै कहो न यक्ष भीर मंडिरे ॥
दिनेश जाय दूरि बैठु नारदादि संग हीं ।
न बोलु चन्द मन्द बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं ॥

यहाँ पर द्रुतगति से फटकार बतलाने के लिए नागराज नामक छोटे छन्द का कितना फड़कता हुआ प्रयोग हुआ है ।

(५) राम राजान के राज आए यहाँ,
धाम तेरे महाभाग जागे अबै ।

देवि मन्दोदरी कुम्भकर्णादि दै,
मित्र मंत्री जिते पूँछि देखो सबै।
राखिए जाति को पाँति को वंश को,
गोत को सोधिए लोक पर्लोक को।
आनिकै पाँ परो देस लै कोप लै,
आसु ही ईश सीता चलैं ओक को॥

यहाँ उपदेश देने के लिए गंगोदक-नामक लम्बे छन्द का बड़ा ही उपयुक्त प्रयोग किया है।

रामचन्द्रिका के अवलोकन से यह स्पष्ट ही विदित होता है कि छन्दों के प्रयोग में केशव ने प्रायः सतर्कता से काम लिया है और उनका प्रयोग प्रायः अवसर तथा भाव के अनुकूल ही किया है। केशव की भाषा में माधुर्य और प्रसाद तीनों गुण मिलते हैं।

(५) भाषाधिकार—

केशव का शब्द-भण्डार पूर्ण है। भाषा को भाव के अनुसार मोड़ने की उनमें अपूर्व शक्ति है और वह उनके इशारे से नाचती हुई सी प्रतीत होती है। बुन्देल खण्डी मिश्रित व्रजभाषा में संस्कृत के मेल से भाव व्यञ्जना की अत्यन्त अधिक शक्ति आ गई है। भाषा की इसी क्षमता के कारण केशव श्लेष, अनुप्रास, विरोधाभास इत्यादि चमत्कार पूर्ण अलंकारों के प्रयोग में सफल हुए हैं। केशव की भाषा को क्लिष्ट और ऊबड़खावड़ कहना उनके प्रति अन्याय करना है। केशव की क्लिष्टता उनकी साहित्यिकता के कारण है। जो लोग साहित्यिक परम्परा से परिचित हैं तथा उन्हें अलङ्कार, छन्द, रस, गुण इत्यादि का पूर्ण ज्ञान है उनके लिए केशव में किसी प्रकार की क्लिष्टता नहीं है। बुन्देलखण्डी तथा संस्कृत के मिश्रण के कारण उसे ऊबड़खावड़ कहना भी उचित नहीं। इस मिश्रण के कारण तो उसमें और अधिक सशक्तता आ

जाती है ऊबड़खाबड़ पन नहीं। रामचन्द्रिका में वीर-रस की प्रधानता होने के कारण ओज गुण की प्रधानता है। रसिक प्रिया के शृंगारिक छन्दों में माधुर्य गुण की प्रधानता है। प्रसादगुण की भी केशव में कमी नहीं। अतः केशव की भाषा में आवश्यकतानुसार हम ओज, माधुर्य और प्रसाद सभी गुणों को पाते हैं और हमें उसकी पूर्ण काव्योपयोगिता में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती। इसलिए यह कथन कि "भाषा भी उनकी काव्योपयोगी नहीं है ; माधुर्य और प्रसाद गुण से तो जैसे वे खार खाए बैठे हैं" निरर्गल प्रतीत होता है। उनके ओज, माधुर्य तथा प्रसाद गुणयुक्त भाषा के कुछ उदाहरण देखिए:—

ओज—

(१) प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद,
चण्ड कोदण्ड रह्यो मंडि नव खण्ड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल,
पालि ऋषिराज के बचन परचण्ड को।
सोधु दै ईस को बोधु जगदीस को,
क्रोध उपजाय भृगुनन्द बरिबण्ड को,
बाँधि कर स्वर्ग को, साधि अपवर्ग, धनु-
भंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को ॥

(२) भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खड़े करतार करे कै।
भारे भिरे रण भूधर भूप न टारे टरे इत कोटि अरे कै ॥
शेष सों खड्ग हने कुश केशव भूरि भिरे न टरेहु गरे कै।
राम बिलोकि कहैं रस अद्भुत खाएँ मरे नग नाग परे कै॥

माधुर्य—

(१) फूल न दिखाउ सूल फूलत है हरि बिनु,
दूरि करि माला बाला-व्याल सी लगीत है।

चंवर चलाउ जनि, बीजन हिलाउ मति,
केशव सुगंध वायु बाइ सी लगति है।
चंदन चढ़ाउ जनि ताप सी चढ़त तन,
कुंकुम न लाउ अंग आगि सी लगति है।
बीर बार बरजति बावरी है ? बारौं आनि,
बीरी न खवाउ बीर बिस सी लगति है॥

(२) फूलीं लतिका ललित तरुन तरु फूले तरुवर।
फूली सरिता सुभग सरस सब फूले सरवर॥
फूलीं कामिनि काम रूप करि कंत न पूजहिं।
सुक सारी कुल हँसौ फूलि कोकिल कुल कूजहिं॥
कहि केशव ऐसी फूल महँ फूलहिं सूल न लाइए।
पिय आपु चलन की का चली चित्त न चैत चलाइए॥

इन उपर्युक्त छन्दों में मधुर वर्णों का तथा अनुस्वारों कितना सुन्दर भावानुकूल प्रयोग हुआ है और माधुर्य की कितनी अच्छी व्यञ्जना हुई है।

प्रसाद—

टूटै टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोस।
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोस।
हम पर कीजत रोस काल गति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई।
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होइ तिनूका वज्र वज्र तिनुका ह्वै टूटै।

(२) जा दिन तें युवराज कहाए।
विक्रम बुद्धि विवेक बढ़ाए॥
जीवत पै कि मरे पहँ जैहैं।
कौन पिताहि तिलोदक दैहैं॥

अंगद हाथ गहै तरु जोई।
जात तहीं तिलसों कटि सोई॥
पर्वत पुंज जिते घन मेले।
फूल के तूल ले बानन झेले॥

(३) हाथी न, साथी न, घोरे न, चेरे न, गाउँ न, ठाउँ को ठाउं विलैहैं।
तात न मात, न मित्र, न वित्त, न तीय कहीं संग रैहैं॥
केशव काम को राम विसारत और निकाम न कामहिं ऐहैं।
चेति रे चेति अजौं चित अंतर आन्तक लोक अकेलोई जैहैं॥

संवादों में तथा भावावेश के समय सर्वत्र ही केशव की भाषा अत्यन्त सरल तथा प्रसादगुण पूर्ण हो गई है।

केशव की भाषा में पूर्ण प्रवाह के साथ साथ मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग मिलता है। निम्नलिखित सवैये में मुहावरों का कितना सुन्दर प्रयोग हुआ है—

हँसि बोलत ही जु हँसै सब केशव लाज भगावत लोक भगे।
कछु बात चलावत घैरु चलै मन आनत ही मनमत्थ जगै॥
सखि तू जो कही सु हुती मन मेरेहु जानि यहै न हियो उमगै।
हरि त्यो टुक डीठि पसारत ही अँगुरीन पसारन लोक लगै॥

केशव में व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग भी बहुत मिलता है और उनकी व्यञ्जनाएं बहुत ही सुन्दर हुई हैं। केशव के संवाद तो ऐसी व्यञ्जनाओं से भरे पड़े हैं। कुछ उदाहरण देखिए :—

(१) भृगुकुल कमल दिनेस सुनु, ज्योति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हो जस भार॥

यहाँ पर यह व्यञ्जना है कि ये बालक तुम्हारा होश ठीक कर देंगे अतः सम्हाल कर बातें कीजिए।

(२) कैसे बँधायो ? जो सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो।

यहाँ पर यह व्यञ्जना है कि पर स्त्री को केवल दूर से आँखों

द्वारा छूने मात्र से मेरी यह दुर्दशा हुई है कि मैं बाँधा गया हूँ। तुम स्वयं समझ लो कि तुम जो दूसरे की स्त्री का अपहरण करने वाले हो किस दशा को प्राप्त होगे।

(३) सदा तुम लक्ष्मण उत्तम गाथ, करौ जनि आपनि मातु अनाथ।

यहाँ पर यह व्यञ्जना है कि हम तुम्हें बिना मारे नहीं छोड़ेंगे यदि तुम इस युद्ध मे भाग लोगे।

(४) आउ बिभीषन तू रन-दूषन। एक तुही कुल कोकिल भूषन॥

यहाँ पर यह व्यञ्जना है कि राम-रावण में जब तुम्हारे लिए लड़ने का अवसर था तुमने अपने भाई को धोखा दिया और अपने कुल का नाश करवाया तुमसे बढ़कर नीच कौन है? भूषण में विपरीत लक्षणा का कितना मार्मिक प्रयोग हुआ है।

(५) कौन के सुत? बालि के, वह कौन बालि? न जानिए?
काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए।
है कहाँ वह वीर? अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो? रघुनाथ-बान विमान बैठि सिधाइयो॥

यहाँ पर यह व्यञ्जना स्पष्ट ही है कि बालि जैसे अप्रतिम वीर को मारने में भी राम को तनिक देर नहीं लगी; तुम किस गिनती में हो।

कहीं-कहीं केशव को थोड़े ही शब्दों द्वारा पूरे प्रसंग की व्यञ्जना कराने में भी अच्छी सफलता मिली है। ऐसे स्थलों पर शब्द केवल संकेत मात्र प्रतीत होते हैं। देखिए—

(१) राम चलत नृप के युग लोचन।
वारिभरित भै वारिद-रोचन।
पाँयनि परि ऋषि के सजि मौनहिं।
केशव उठिगे भीतर भौनहिं।

यहाँ पर बालक राम को विवश होकर विश्वामित्र ऋषि के

साथ भेजते समय दशरथ की जो शोचनीय दशा होती है उसकी बड़ी ही गम्भीर व्यञ्जना थोड़े ही शब्दों द्वारा कराई गई है।

(२) तब पूछियो रघुराइ, सुख है पिता तन भाइ।
तब पुत्र को मुख जोइ, क्रम तें उठी सब रोइ॥

यहाँ पर दशरथ की मृत्यु के बाद राम की माताओं की जो कारुणिक दशा होती है उसकी थोड़े ही शब्दों में व्यंजना कराई गई है।

(३) हा राम, हा रमन, हा रघुनाथ धीर।
लंकाधिनाथ बश जानहु मोहिं वीर।
हा पुत्र लक्ष्मण छोड़ा वहु वेगि मोहीं।
मार्तण्डवंश की सब लाज तोहीं॥

अन्तिम उदाहरण को लेकर केशव की बड़ी तीव्र आलोचना की गई है। इसके सम्बन्ध में एक आलोचक का कथन है कि 'यदि केशव मनोवृत्तियों से परिचित होते तो इस अवसर पर इस अपील में उनकी सीता अपना हृदय खोलकर रख देतीं; अपनी निःसहाय अवस्था का जिक्र करती; अपने हर्ता की क्रूरता का बयान करतीं' इत्यादि। इस विषय में केवल इतना ही निवेदन है कि आलोचक स्वयं मानव मनोवृत्तियों से परिचित ज्ञात नहीं होता। भयंकर क्रूर तथा विकराल राक्षस के हाथ में पड़ी हुई जानकी की ठीक वही दशा है जो एक प्रचण्ड सिंह के द्वारा आक्रान्त व्यक्ति की हो सकती है। ऐसी दशा में मुँह से एक शब्द तक निकालना कठिन है अपना हृदय खोलकर रखना तो दूसरी बात है। अतः केशव ने थोड़े ही संकेतात्मक शब्दों के द्वारा जो इस निःसहाय परिस्थित की व्यंजना कराई है वह सर्वथा समीचीन है।

रामचन्द्रिका में मरुकर (मुश्किल से), उपदि (गुरुजनों की इच्छा के विरुद्ध), उरगन (स्वीकार करना), गलमुई (गाल

के नीचे रखने की (तकिया), गेंहुआ (तकिया), गौरमराइन (इन्द्र धनुष) इत्यादि कुछ प्रान्तीय बुन्देलखण्डी शब्दों का प्रयोग मिलता है तथा स्वलीलया, निजेच्छया, लीलमेन इत्यादि सार्वभौतिक संस्कृत शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग मिलता है। इस प्रकार शब्दों का प्रयोग सर्वथा समीचीन तो नहीं कहा जा सकता किन्तु काव्य में छन्द की सुविधा को दृष्टि में रखते हुए इसे विशेष दोषपूर्ण भी नहीं कहा जा सकता।

अब केशव की भाषा के दोषों पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। केशव की रामचन्द्रिका की भाषा में निम्नांकित कुछ दोष दिखलाए गए हैं:—

च्युत संस्कृतिः—

(१) पीछे मघवा मोहिं साप दयी (दयो)

(२) अंगद रक्षा रघुपति कीन्हो (कीन्ही)

(३) करैं साधना एक परलोक ही कौ (की)

अक्रमत्वः—

(१) अमानुषी भूमि अवानरी करौं

न्यूनपदत्वः—

पानी पावक पवन प्रभु, ज्यों असाधु त्यों साधु

अधिक पदत्वः—

अति द्वार द्वार महँ युद्ध भए। बहु ऋच्छ कँगूरनि लागि गए।
तब स्वर्ण लंक महँ शोभ भई। जनु अग्निज्वाल मह धूम मई॥

यहाँ मई शब्द व्यर्थ है।

निरर्थत्वः—

विषमय यह गोदावरी, अमृतन के फल देत।
केसव जीवन हार के, दुःख असेस हरि लेत॥

यहाँ विष और जीवन का प्रयोग पानी के अर्थ में अधिक प्रसिद्ध नहीं है।

अश्लीलत्व—

दुख देख्यो ज्यों कालि त्यों आजहुँ देखौ।

यहाँ कुछ अमंगल की भावना व्यंजना हो जाती है।

समाप्त पुनरात्तत्व—

गाय द्विजराज तिय काज न पुकार लागै,
भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि।

यहाँ भोगवै नरक घोर के साथ वाक्य समाप्त हो गया किन्तु फिर से उसे 'चोर को अभयदानि' इतना जोड़कर उठा दिया गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कोई भी कवि इस प्रकार के दोषों से सर्वथा वञ्चित नहीं रह सकता। कवि अपनी मस्ती में इन छोटी-मोटी बातों की ओर विशेष ध्यान ही नहीं दिया करते। छन्द बैठाने के लिए भी भाषा में कभी-कभी इस प्रकार की शिथिलता आवश्यक-सी हो जाया करती है।

(६) संवाद-सौष्ठव

केशव को संवादों में अत्यन्त अधिक सफलता मिली है। फड़कती हुई सजीव भाषा में पात्रों के अनुकूल क्रोध उत्साह आदि की अत्यन्त सुन्दर व्यंजना इनके संवादों की प्रथम विशेषता है। रावण-बाण-संवाद लक्ष्मण राम परशुराम-संवाद तथा लवकुश के प्रसंग के संवाद इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं। विदग्धता तथा व्यंग्य, मुँह तोड़ उत्तर-प्रत्युत्तर तथा भावानुकूल छन्द-योजना इनके संवादों की कुछ अन्य विशेषताएँ हैं। राजनीति के दाँव-पेच की प्रभावपूर्ण व्यंजना भी इनके संवादों में कहीं-कहीं बहुत ही सुन्दर हुई है। रावण-अंगद-संवाद, रावण हनुमान-संवाद इस दृष्टि से बहुत ही सुन्दर तथा रोचक हुए हैं। दशरथ-विश्वामित्र-संवाद, वामदेव-परशुराम-संवाद, रावण सीता-संवाद, रावण-मन्दोदरी-संवाद, राम-भरत-संवाद इत्यादि अन्य संवाद भी बहुत

ही सरस, सजीव तथा आकर्षक हुए हैं। कुछ उदाहरण देखिए:—

(१) लक्ष्मण—क्षत्रिय ह्वै गुरु लोगनि के प्रतिपाल करैं।
भूलिहुँ तो तिनके गुन औगुन जी न धरैं।
तौ हमको गुरुदोस नहीं अब एक रती।
जो अपनी जननी तुमहीं सुख पाय हती॥

परशुराम—
लक्ष्मण के पुरिखान कियो, पुरुसारथ सो न कह्यो परई।
वेस बनाइ कियो वनितानि को, देखत केसव ह्यौ हरई।
क्रूर कुठार निहारि तजै फल ताको यहै जो हियो जरई।
आजु तें केवल तोको महाधिक क्षत्रिन पै जो दया करई॥

राम—
भृगुकुल-कमल-दिनेस मुनि, ज्योति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हो जस भार॥

इन उपर्युक्त उद्धरणों में लक्ष्मण की वक्रता, परशुराम की क्रोधशीलता तथा राम की गम्भीरता स्पष्ट ही व्यंजित है।

(२) राम को काम कहा? रिपु जीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यो कहाँ?
बालिबली, छल सों, भृगुनन्दन गर्व हर्यो, द्विज दीन महा॥
दीन सो क्यों? छिति छत्र हत्यौ बिन प्राणनि हैहयराज कियो।
हैहय कौन? वहै, बिसर्यो? जिन खेलत ही तुम्हें बाँधि लियो॥

यहाँ वचन-विदग्धता, व्यंग्य, मुँह तोड़ उत्तर-प्रत्युत्तर तथा छन्द का प्रवाह देखने योग्य है।

(३) रावण—
देहिं अंगद राज तोकहँ, मारि बानर राजकों।
बाँधि देहिं बिभीषनै अरु फोरि सेतु-समाज कों।
पूँछ जारहिं अच्छरिपु की, पाइँ लागहिं रुद्र के।
सीय को तब देहुँ रामहिं, पार जाइँ समुद्र के।

अंगद—
लंक लाइ गयौ बली हनुमन्त संतन गाइयो।
सिंधु बाँधत सोधि कै नल छीर छीट बहाइयो॥

ताहि तोहिं समेत अंध उखारि हों उलटी करौं।
आजु राज कहाँ बिभीषण बैठहैं तेहितें डरौं॥

रावण के कथन में राजनीति के दाँव-पेच की कितनी सुन्दर व्यंजना है। अंगद के कथन में कितनी विदग्धता तथा व्यंग्य है।

उत्कृष्ट संवादों से सारी रामचन्द्रिका भरी पड़ी है और इन संवादों के कारण रामचन्द्रिका में नाटक की सी सजीवता आ गई है। रामचन्द्रिका के लिए ये संवाद भूषण हैं दूषण नहीं। हिन्दी साहित्य में कहीं भी अन्यत्र इतने सुन्दर संवाद नहीं मिलते और इस दृष्टि से केशव का स्थान निर्विवाद सर्वोच्च स्वीकृत किया गया है। तुलसी के संवादों में भी वह सजीवता तथा विदग्धता नहीं है जो केशव के संवादों में है।

उपसंहार—

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कला-निपुणता तथा शुद्ध कविता की दृष्टि से हिन्दी कवियों में केशव का स्थान किसी से भी नीचा नहीं है। तुलसी और सूर का जनता के ऊपर अधिक प्रभाव है। वह उनकी भक्ति की गम्भीरता तथा भावुकतापूर्ण व्यंजना के कारण है। वे प्रथम भक्त हैं, तदनन्तर कवि। केशव प्रथम कवि हैं तदनन्तर भक्त। इसका यह अभिप्राय नहीं हैं कि हमें तुलसी तथा सूर में उत्कृष्ट कवित्व शक्ति के दर्शन नहीं होते इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि जहाँ तक कला-चातुरी तथा शुद्ध कवित्व का सम्बन्ध है केशव उनसे आगे बढ़ जाते हैं। यदि हम कला निपुणता के साथ-साथ प्रभविष्णुता का भी विचार करते हैं तो तुलसी और सूर का स्थान निःसन्देह केशव से ऊँचा ठहरता है और केशव तृतीय स्थान के ही भागी बनते हैं। केशव को कबीर, जायसी, बिहारी तथा देव के भी नीचे घसीटना उस महान् कवि के साथ घोर अन्याय करना है।

—जगन्नाथ तिवारी

संक्षिप्त रामचन्द्रिका

मंगलाचरण

गणेश-वन्दना

बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारैं सब काल,
कठिन-कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
विपति- हरत हठि पद्मिनी-के-पात-सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरि-कै-कलंक अंक भवशीश-शशि-सम,
राखत हैं केशोदास दास-के-वपुख-को।
साँकरे की साँकरन सनमुख होत तोरै,
दशमुख मुख जोवैं गजमुख मुख को॥ १॥

सरस्वती-वन्दना

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि कहि हारे सब, कहि न केहूँ लई।
भावी, भूत, वर्त्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहूँ न बखानी काहू पै गई।
वर्णे पति चारिमुख पूत वर्णे पाँच मुख,
नाती वर्णे षट मुख, तदपि नई नई ॥ २ ॥

राम-वन्दना

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि,
पूरण बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
दरशन देत, जिन्हें दरशन समुझै न,
नेति नेति कहै वेद छाँड़ि आन युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम,
रटत रहत न डरत पुनिरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि, नाम देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को ॥ ३ ॥

———

(१) अयोध्यापुरी-वर्णन

ऊँचे अवास । बहु ध्वज प्रकास ।
सोभा विलास । सोभै अकास ॥ १ ॥

अति सुंदर अति साधु । थिर न रहत पल आधु ।
परम तपोमय मानि । दंड-धारिनी जानि ॥ २ ॥

शुभ द्रोणगिरिगण शिखर ऊपर उदित औषधि सी गनौ ।
बहु वायु वश-बारिद बहोरहि अरुझि दामिनि द्युति मनौ ॥
अति किधौं रुचिर प्रताप पावक प्रगट सुरपुर को चली ।
यह किधौं सरित सुदेश मेरी करी दिवि खेलति भली ॥ ३ ॥

जीति जीति कीरति लई, शत्रुन की बहु भाँति ।
पुर पर बाँधी सोभिजै, मानो तिनकी पाँति ॥ ४ ॥

सम सब घर सोभैं, मुनि मन लोभैं,
रिपुगण छोभैं, देखि सबै ।
बहु दुंदुभि बाजैं, जनु घन गाजैं,
दिग्गज लाजैं, सुनत जबै ॥
जहँ तहँ श्रुति पढ़हीं, बिघन न बढ़हीं,
जै जस मढ़हीं, सकल दिशा ।
सबई सब विधि छम, बसत यथाक्रम,
देवपुरी सम दिवस निशा ॥ ५ ॥

कवि-कुल, विद्याधर, सकल कलाधर,
राजराज वर वेष बने।
गणपति सुखदायक, पशुपति लायक,
सूर सहायक कौन गने।
सेनापति, बुधजन, मंगल गुरु गण
धर्मराज मन बुद्धि घनी।
बहु शुभ मनसाकर, करुणामय, अरु
सुरतरंगिनी सोभसनी ॥ ६ ॥

पंडितगण मंडितगुण, दंडित-मति देखिए।
क्षत्रिय वर धर्म-प्रवर क्रुद्ध समर लेखिए।
वैश्य सहित-सत्य रहित-पाप प्रगट मानिए।
शूद्र सकति विप्र भगति, जीव जगत जानिए ॥ ७ ॥

अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चिंतामणि नारि।
बहु-सत मख-धूमनि-धूपित अंगनि हरि की सी अनुहारि।
चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि केशवदास निहारि।
जनु विश्वरूप को अमल आरसी रची विरंचि विचारि ॥ ८ ॥

श्लेषपुष्ट जग यशवंत विशाल, राजा दशरथ की पुरी।
चंद्र सहित सब काल, भालथली जनु ईश की ॥ ९ ॥

उत्प्रेक्षा पंडित अति सिगरी पुरी, मनहु गिरा गति गूढ़।
सिंहन-युत जनु चंडिका, मोहति मूढ़ अमूढ़ ॥

मोहति मूढ़ अमूढ़, देव सँगऽदिति सी सोहै।
सब शृंगार सदेह, मनो रति मन्मथ मोहै॥
सब शृंगार सदेह, सकल सुख सुखमा मंडित।
मनो शची विधि रची विविध विधि बरणत पंडित॥१०॥

मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम-हुताशन-धूम नगर एकै मलिनाइय॥
दुर्गति दुर्गनही जो, कुटिलगति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कविकुल के जी में॥११॥

अति चंचल जहँ चलदलै, विधवा बनी न नारि।
मन मोह्यो ऋषिराज को, अद्भुत नगर निहारि॥१२॥

नागर नगर अपार, महामोहतम मित्र से।
तृष्णालता कुठार, लोभसमुद्र अगस्त्य से॥१३॥

विधि के समान हैं विमानीकृत-राजहंस,
विविध विबुध युत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति, सातौं दीप दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदच्छिणा को बल है।
सागर उजागर की बहु वाहिनी को पति,
छनदान प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ,
भगीरथपथगामी गंगा कैसौ जल है॥१४॥

यद्यपि इंधन जरि गये अरिगण केशवदास।
तदपि प्रतापानलन के पल पल बढ़त प्रकाश॥१५॥

---

(२) सीता-स्वयम्वर

खंडपरस को सोभिजै, सभा मध्य कोदंड।
मानहुँ शेष अशेष धर, धरनहार बरिबंड ॥ १ ॥

सोभित मंचन की अवली गजदंतमई छवि उज्ज्वलि छाई।
ईश मनो वसुधा में सुधारि सुधाधरमंडल मंडि जोन्हाई।
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यों जनु देवसभा शुभ सीयस्वयंवर देखन आई ॥ २ ॥

पावक पवन मणिपन्नग पतंग पितृ,
जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिपिन गाए हैं।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिंधु,
केशव चराचर जे वेदन बताए हैं।
अजर अमर अज अंगी औ अनंगी सब,
वरणि सुनावै ऐसे कौने गुण पाए हैं।
सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिवे कों,
भूपन को रूप धरि विश्वरूप आए हैं ॥ ३ ॥

दिकपालन की, भुवपालन की, लोकपालन की किन मातु गई च्वै।
ठाढ़ भए उठि आसन तें, कहि केशव, शंभुशरासन को छ्वै।
काहू चढ़ायो न, काहू नवायो न, काहू उठायो न आँगुरहू द्वै।
स्वारथ भो न भयो परमारथ, आए ह्वै वीर, चले बनिता ह्वै ॥४॥

काहू को न भयो कहूँ, ऐसो सगुन, न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उद्दोत ॥ ५ ॥

राम

कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे।
चितवन चित्त कुमुदिनी त्रसै। चोर चकोर चिता-स ल

लक्ष्मण

अरुण गात अति प्रात पद्मिनीप्राणनाथ भय।
मानहुँ केशवदास कोकनद - कोकप्रेममय।
परिपूरण सिंदूरपूर कैधौं मंगलघट।
किधौं शक्र को छत्र मढ़्यो मानिकमयूपपट।
कै श्रोणितकलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को ॥ ७ ॥

पसरे कर कुमुदिनि काज मनो।
किधौं पद्मनि को सुख देन घनो।
जनु ऋक्ष सबै यहि त्रास भगे।
जिय जानि चकोर फँदान ठगे ॥ ८ ॥

राम

व्योम मे मुनि देखिए अतिलाल श्रीमुख साजहीं।
सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजहीं।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई।
सूर वाजिन की खुरी अति तिक्षुता. तिनकी हई ॥ ९ ॥

चढ्यो गगनतरु धाय, दिनकर-बानर अरुणमुख।
कीन्हों झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन॥ १० ॥

लक्ष्मण

जहाँ वारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज ।
तहीं कियो भगवंत बिन, संपति शोभा साज ॥ ११ ॥
चहुँभाग बाग तड़ाग । अब देखिए बड़भाग ॥
विरोधाभास फल फूल सों संयुक्त । अलि यों रमैं जनु मुक्ति ॥ १२ ॥

राम

ते न नगरि ना नागरी, प्रतिपद हंसक हीन ।
जलजहार शोभित न जहँ, प्रगट पयोधर पीन ॥ १२ ॥

सातहु दीपनि के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।
बीस बिसे व्रत भंग भयो, सो कहो, अब केशव, को धनु ताने ?
शोक की आगि लगी परिपूरण आइ गए घनश्याम बिहाने ।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने ॥१४॥

आइ गई ऋषिराजहिं लीने । मुख्य सतानंद विप्र प्रवीने ।
देखि दुवौ भए पाँयनि लीके । आशिष शीरषवासु लै दीने॥१५॥

विश्वामित्र

केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति-बेलि बई है ।
दानकृपान-विधानन सों वसुधा जिन हाथ लई है ।

अंग छ सातक आठक सों भव तीनहु लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योगमई है॥ १६॥

जनक

जिन अपनो तनस्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि मैं।
कीन्हों उत्तमवर्ण, तेई विश्वामित्र ये॥ १७॥

लक्ष्मण

जनराजवंत। जगयोगवंत।
तिनको उदोत। केहि भाँति होत॥ १८॥

राम

सब छत्रिन आदि दै काहु छुई न छुए बिजनादिक बात डगै।
न घटै न बढै निशि-बासर केशव लोकन को तमतेज भगै।
भवभूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहूँ थलहूँ परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत ज्योति जगै॥१९॥

जनक

यह कीरति और नरेशन सोहै।
सुनि देव अदेवन को मन मोहै।
हम को बपुरा सुनिए ऋषिराई।
सब गाँउँ छ सातक की ठकुराई॥ २०॥

विश्वामित्र

आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई।

भूपति की तुमही धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई ।
केशव भूसन को भवि भूसण भू तन तैं तनिया उपजाई ॥२१॥

जनक

इहि विधि की चित चातुरी, तिनको कहा अकत्थ ।
लोकन की रचना रुचिर, रचिवे कौं समरत्थ ॥ २२ ॥

ये सुत कौन के सोभहिं साजे ?
सुन्दर श्यामल गौर विराजे ।
जानत हौं जिय सौदर दोऊ ।
कै कमला विमला पति कोऊ ॥ २३॥

विश्वामित्र

सुन्दर श्याम राम सु जानो । गौर सुलक्ष्मण नाम बखानो ।
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ । सूरज के कुलमंडन दोऊ ॥२४॥

नृपमणि दशरथ नृपति के, प्रगटे चार कुमार ।
राम भरत लक्ष्मण ललित, अरु शत्रुघ्न उदार ॥२५॥

दानिन के शील पर दान के प्रहारी दिन,
दानिवार ज्यों निदान देखिए सुभाय के ।
दीप दीप हूँ के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के ।
आनंद के कंद सुरपालक से बालक ये,
परदारप्रिय साधु मन वच काय के ।

देहधर्मधारी पै विदेहराज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के ॥ २६ ॥
रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो।
अति दुष्कर राजसमाजनि लेख्यो।

जनक

ऋषि है वह मन्दिर माँझ मँगाऊँ।
गहि ल्यावहिं हौं जनयूथ बुलाऊँ ॥ २७ ॥
वज्र ते कठोर है, कैलास तें विशाल, काल-
दंड तें कराल, सब काल-काल गावई।
केशव त्रिलोक के विलोकि हारे देव सब,
छोड़ चन्द्रचूड़ एक और को चढ़ावई ?
पन्नग प्रचंड पति प्रभु की पनच पीन,
पर्वतारि पर्वत-प्रभा न मान पावई।
विनायक एकहू पै आवै न पिनाक ताहि
कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई ॥ २८ ॥

विश्वामित्र

सुन रामचन्द्र कुमार। धनु आनिए यहि बार ॥
पुनि बेगि ताहि चढ़ाव। यश लोक लोक बढ़ाव ॥ २९ ॥
रामचंद्र कटिसौं पटु बाँध्यो। लीलयेव हर को धनु साँध्यो ॥
नेकु ताहि करपल्लव सों छ्वै। फूलमूल जिमि टूक करयो द्वै ॥३०॥

उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जु हाथ कै लीनो।
निर्गुण ते गुणवंत कियो सुख केशव संत अनंतन दीनो।
ऐंचो जहीं तबहीं कियो संयुत तिच्छ कटाच्छ-नराच नवीनो।
राजकुमार निहारि सनेह सों शंभु को साँचो शरासन कीनो ॥३१॥

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद
चंड कोदंड रह्यो मंडि नव खंड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल
पालि ऋषिराज के बचन परचंड को।
सोधु दै ईश को, बोधु जगदीश को,
क्रोधु उपजाइ भृगुनन्द बरिबंड को।
बाँधि वर स्वर्ग को, साधि अपवर्ग, धनु-
भंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को॥ ३२॥

तिभंग

सीताजू रघुनाथ को, अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबन की, हृदयावलि भूपाल॥ ३३॥

---

(२) परशुराम-संवाद

विस्वामित्र बिदा भए, जनक फिरे पहुँचाइ।
मिले आगिली फौज को, परसुराम अकुलाइ ॥ १ ॥

मत्त दंति अमत्त होगए, देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहिं बज्जहीं ॥
डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि कै तनत्राण एकै नारि वेखन सज्जहीं ॥ २ ॥

वामदेव ऋषि सों कह्यो, परसुराम रणधीर।
महादेव को धनुष यह, को तोरेउ बलवीर ? ॥ ३ ॥

वामदेव

महादेव को धनुष यह, परशुराम ऋषिराज !
तोरेउ 'रा' यह कहतहीं समुझेउ रावन राज ॥ ४ ॥

परशुराम

अर बान-सिखीन असेस समुद्रहि,
सोखि सखा सुख ही तरिहौं।
पुनि लंकहिं औटि कलंकित कै,
फिरि पंक कलंकहिं की भरिहौं।
भल भूँजि कै राख सुखै करिकै,
दुख दीरघ देवन को हरिहौं ॥

सितकंठ के कंठन को कठुला,
दसकंठ के कंठन को करिहौं ॥ ५ ॥
यह कौन को दल देखिए ?
यह राम को प्रभु लेखिए ॥
कहि कौन राम न जानियो।
शर ताड़का जिन मारियो ॥ ६ ॥

परशुराम

ताड़का संहारी तिय न विचारी
कौन बड़ाई ताहि हने ?

वामदेव

मारीच हुते सँग प्रबल सकल खल
अरु सुबाहु काहू न गने।
करि क्रतु रखवारी गुरु सुखकारी।
गौतम की तिय सुद्ध करी।
जिन रघुकुल मंड्यो हरधनु खंड्यो
सीय स्वयंवर माँझ बरी ॥ ७ ॥

परशुराम

हर हू होतो दंड द्वै, धनुख चढ़ावत कष्ट।
देखो महिमा काल की, कियो सो नरसिसु नष्ट ॥ ८ ॥

बोरों सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहिं।
बान की वायु उड़ाइ कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।
रामहिं बाम समेत पठै वन कोप के भार में भूँजौ भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तौ आज अनाथ करौं दसरत्थहिं ॥९॥

राम देखि रघुनाथ, रथ ते उतरे बेगि दै।
गहे भरत को हाथ, आवत राम विलोकियो ॥ १० ॥

परशुराम

अमल सजल घनस्याम-वपु केसौदास
चंद्रहू ते चारु मुख सुखमा को ग्राम है।
कोमल कमल-दल दीरघ विलोचननि
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है।
बालक विलोकियत पूरन पुरुष, गुन
मेरो मन मोहियत ऐसो एक याम है।
वैर मान वामदेव को धनुख तोरो इन
जानत हौं बीस बिसे राम वेस काम है ॥ ११ ॥

भरत

कुस मुद्रिका समिधैं स्रुवा कुस औ' कमंडल को लिए।
करमूल सर धनु तर्कसी भृगुलात सी दरसै हिए॥
धनु बाण तिच्छ कुठार केसव मेखला मृग चर्म सों।
रघुवीर को यह देखिए रसवीर सात्त्विक धर्म सों ॥ १२ ॥

राम

प्रचंड हैहयाधिराज दंडमान जानिए ॥
अखंड कीर्त्ति लेय, भूमि देयमान मानिए ॥
अदेव देव जेय भीत रच्छमान लेखिए।
अमेय तेज भर्गभक्त भार्गवेश देखिए ॥ १३ ॥
सुनि रामचंद्र कुमार। मन वचन कीर्ति उदार ॥
भृगुवंश के अवतंस। मनवृत्ति है केहि अंस ॥ १४ ॥
सरासन संकर को सुभ सीय स्वयंवर माँझ वरी।
ताते बढ़्यो अभिमान महा मन मेरीयो नेक न संक करी ॥
सो अपराध परो हम सों अब क्यों सुधरै तुमहूँ धौं कहौ।
बाहु दै दोउ कुठारहिं केशव आपने धाम को पंथ गहौ ॥१५॥

राम

टूटै टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोस।
त्यों अब हर के धनुख को हम पर कीजत रोस।
हम पर कीजत रोस कालगति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई।
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होइ तिनूका वज्र वज्र तिनुका ह्वै टूटै ॥ १६ ॥

परशुराम

केसव हैहयराज को मांस
हलाहल कौरन खाइ लियो रे।

तालगि मेद महीपन को
घृत घोरि दियौ न सिरानो हियो रे।
खोर खडानन कौ मद केसव
सो पल मैं करि पानि लियो रे।
तौ लौं नहीं सुख, जौ लहुँ तू
रघुबंस को स्रोन-सुधा न पियो रे॥ १७॥

भरत

बोलत कैसे भृगुपति सुनिए
सो कहिए तन मन बनि आवौ।
आदि बड़े हौ, बड़पन राखौ
जाते तुम सब जग यश पावौ॥
चंदनहूँ में अति तन घसिए
आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हैहय मारे, नृपति सँहारे
सो जस लै किन जुग जुग जीजै॥ १८॥

परशुराम

भली कही भरत्थ तैं उठाय आगि अंग तैं।
चढ़ाइ चापि चाप आप बाण लै निषंग तैं॥
प्रभाइ आपनो देखाइ, छोड़ि बाल-भाइ कै।
रिझाइ राजपुत्र मोहिं, राम लै छुड़ाइ कै॥ १९॥

२

"निज अपराधी क्यों हतौं, गुरुअपराधी छाँड़ि।
ताते कठिन कुठार अब, रामहिं सों रन माँड़ि॥ २६॥

"भूतल के सब भूपन को मद-
भोजन तो, बहु भाँति कियोई।
मोद सौं तारक-नंद को मेद-
पछ्यावरि पान सिरायो हियोई।
खीर खडानन को मद केसव
सो पल में करि पान लियोई।
राम तिहारेइ कंठ को सोनित
पान को चाहै कुठार कियोई" ॥ २७॥

लक्ष्मण

जिनकोहिं अनुग्रह वृद्धि करै।
तिनको किमि निग्रह चित्त परै॥
जिनको जग अच्छत सील धरै।
तिनको तन नच्छत कौन करै॥ २८॥

परशुराम

हाथ धरे हथियार सबै तुम सोभत हौ।
मारनहारहिं देखि कहा मन छोभत हौ।
छत्रिय के कुल है किमि बैनन दीन रचौ।
कोटि करो उपचार न कैसेहु मीचु बचौ॥ २९॥

लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोस करि।
बरज्यौ श्री रघुनाथ, तुम बालक जानत कहा ? ॥ २० ॥
भगवंतन सों जीतिए, कबहुँ न कीने शक्ति।
जीतिय एकै बात तें केवल कीने भक्ति ॥ २१ ॥
जब हयो हैहयराज उन, बिन छत्र छितिमंडल करयौ।
गिरि बेधि, खटमुख जीति, तारकनन्द को जब ज्यौं हरयौ ॥
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनंदिनी।
'वह रेणुका तिय धन्यधरणी में भई जगवंदिनी' ॥ २२ ॥

परशुराम

सुनु राम सील-समुद्र। तव बंधु हैं अति छुद्र।
मम वाडवानल-कोप। अँगु कियो चाहत लोप ॥ २३ ॥

शत्रुघ्न

हौ भृगुनंद बली जगमाहीं।
राम बिदा करिए घर जाहीं।
हौं तुमसौं भिरि युद्धहि माँड़ौं।
छत्रिय बंस को वैर लै छाँड़ौं ॥ २४ ॥
यह बात सुनी भृगुनाथ जबै।
कहि, "रामहि लै घर जाहु अबै ॥
इन पै जगजीवत जो बचिहौं।
रन हौं तुमसौं फिरिकै रचिहौं ॥ २५ ॥

"निज अपराधी क्यों हतौं, गुरुअपराधी छाँड़ि।
ताते कठिन कुठार अब, रामहिं सों रन माँड़ि॥ २६॥

"भूतल के सब भूपन को मद-
भोजन तो बहु भाँति कियोई।
मोद सौं तारक-नंद को मेद-
पछयावरि पान सिरायो हियोई।
खीर खडानन को मद केसव
सो पल में करि पान लियोई।
राम तिहारेइ कंठ को सोनित
पान को चाहै कुठार कियोई" ॥ २७॥

लक्ष्मण

जिनकोहि अनुग्रह वृद्धि करै।
तिनको किमि निग्रह चित्त परै॥
जिनको जग अच्छत सीस धरै।
तिनको तन सच्छत कौन करै॥ २८॥

परशुराम

हाथ धरे हथियार सबै तुम सोभत हौ।
मारनहारहिं देखि कहा मन छोभत हौ।
छत्रिय के कुल ह्वै किमि बैनन दीन रचौ।
कोटि करो उपचार न कैसेहु मीचु बचौ॥ २९॥

लक्ष्मण

छत्रिय ह्वै गुरु लोगन के प्रतिपाल करैं।
भूलिहु तौ तिनके गुन औगुन जी न धरैं।
तो हमको गुरुदोस नहीं अब एक रती।
जो अपनी जननी तुमहीं सुख पाय हती॥ ३०॥

परशुराम

लक्ष्मण के पुरिखान कियो
पुरुसारथ सो न कह्यो पर‌ई।
वेस बनाइ कियौ वनितानि को
देखत केसव ह्यौं हर‌ई।
क्रूर कुठार निहारि तजै फल
ताकौ यहै जो हियो जर‌ई।
आजु तैं केवल तोको महाधिक,
छत्रिन पै जो दया कर‌ई॥ ३१॥

तव एकविंसति वेर मैं विन छत्र की पृथिवी रची।
वहु कुंड सोनित सौं भरे पितु-तर्पनादि क्रिया सची।
उबरे जे छत्रिय छुद्र भूतल सोधि सोधि सँहारिहौं।
अव वाल वृद्ध न ज्वान छाँड़हुँ धर्म निर्दय पारिहौं॥ ३२॥

राम

भृगुकुल-कमल-दिनेस सुनि, ज्योति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ जसभार॥ ३३॥

परशुराम

राम सुबंधु सँभारि, छोड़त हौं सर प्रानहर।
देहु हथ्यारन डारि, हाथ समेतिन बेगि दै॥ ३४॥

राम

सुनि सकल लोक गुरु जामदग्नि।
तप विशिख असेसन की जो अग्नि॥
सब विशिख छाँड़ि सहिहौं अखंड।
हर-धनुख करयौ जिन खंड खंड॥ ३५॥

परशुराम

बान हमारेन के तनत्रान विचारि विचारि विरंचि करे हैं।
गोकुल ब्राह्मण नारि नपुंसक जे जग दीन सुभाव भरे हैं॥
राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं।
गाधि के नंद तिहारे गुरू जिनते ऋषि वेख किए उबरे हैं॥

राम

भगन भयो हर-धनुख साल तुमको अब सालै।
वृथा होइ विधि-सृष्टि ईस आसन ते चालै॥
सकल लोक संहरहु सेस सिर ते धर डारैं।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होहिं सबही तम भारैं॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केसव बुड़ि जाय बरु।
भृगुनंद सँभारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त शरु॥३७॥

राम राम जब कोप कर्यो जू।
लोक लोक भय भूरि भर्यो जू॥
वामदेव तब आपुन आए।
राम देव दोऊ समुझाए॥ ३८॥

महादेव को देखि कै, दोऊ राम विसेस।
कीन्हों परम प्रनाम उन, आसिस दियो असेस॥३९॥

महादेव

भृगुनंदन सुनिए मन महँ गुनिए रघुनंदन निर्दोषी।
निजु ये अविकारी सब सुखकारी सब ही विधि संतोषी॥
एकै तुम दोऊ और न कोऊ एकै नाम कहायौ।
आयुर्बल खूट्यौ धनुष जो टूट्यौ मैं तनमन सुख पायौ॥४०॥

तुम अमल अनंत अनादि देव।
नहिं वेद बखानत सकल भेव॥
सब को समान नहिं बैर नेह।
सब भक्तन कारन धरत देह॥ ४१॥

अब आपनपो पहिचानि विप्र।
सब करहु आगिलो काज छिप्र॥
तब नारायण को धनुष जानि।
भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि॥ ४२॥

नारायन कौ धनुबान लियो।
ऐंच्यो हँसि देवनि मोद कियो॥

रघुनाथ कहेउ अब काहि हनौं ।
त्रैलोक्य कँप्यो भय मान घनो ॥ ४३ ॥

दिग्देव दहे, बहु बात बहे ।
भूकंप भए, गिरिराज ढहे ॥
आकास विमान अमान छए ।
हा हा सबही यह शब्द रए ॥ ४४ ॥

परशुराम

जग-गुरु जान्यो । त्रिभुवन मान्यो ॥
मम गति मारौ । हृदय विचारो ॥ ४५ ॥

विषयी की ज्यों पुष्पशर, गति को हनत अनंग ।
रामदेव त्योंही कियो, परशुराम गति भंग ॥ ४६ ॥

सुर-पुर गति भानी सासन मानी, भृगुपति को सुख भारो ।
आशिष रसभीने सब सुख दीने अब दसकंठहि मारो ॥४७॥

सोवत सीतानाथ के, भृगुमुनि दीन्हों लात ।
भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात ॥४८॥

(४) वनमार्ग में राम

विपिन-मारग राम विराजहीं।
सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं॥
विविध श्रीफल सिद्धि मनो फल्यो।
सकल साधन सिद्धिहि लै चल्यो॥१॥

कौन हो, कित तें चले, कित जात हौ, केहि काम जू।
कौन की दुहिता, बहू, कहि कौन की यह बाम जू॥
एक गाँउँ रहौ कि साजन मित्र बंधु बखानिये।
देश के, परदेश के, किधौं पंथ की पहिचानिये॥२॥

किधौं यह राजपुत्री, बरहीं बरी है किधौं,
उपदि बरयो है यहि सोभा अभिरत हौ।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ केसोदास
जात तपोवन सिव बैर सुमिरत हौ।
किधौं मुनि शापहत, किधौं ब्रह्मदोपरत ;
किधौं सिद्धियुत, सिद्धि परम विरत हौ।
किधौं कोऊ ठग हो ठगोरी लीन्हें, किधौं तुम
हरि हर श्री हो शिवा चाहत फिरत हौ॥३॥

मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी
रूप रूरे लसैं देहधारी मनो।

भूरि भागीरथी भारती हंसजा
अंस के हैं, मनौ, भाग भारे भनौ ॥
देवराजा लिए देवरानी मनो
पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिए।
पच्छ दू संधि संध्या सधी हैं, मनौ
लच्छि ये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही मोहिए ॥ ४ ॥

तड़ाग नीर-हीन ते सनीर होत केसौदास
पुंडरीक-झुंड भौंर-मंडलीन मंडहीं।
तमाल वल्लरी समेत सूखि सूख के रहे
ते बाग फूलि फूलि के समूल सूल खंडहीं ॥
चितै चकोरिनी चकोर, मोर मोरनी समेत
हंस हंसिनी समेत, शारिका सबै पढ़ैं।
जहां जहां विराम लेत रामजू तहां तहां
अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सो बढ़ैं ॥ ५ ॥

घाम को राम-समीप महाबल।
सीतहिं लागत है अति-सीतल ॥
ज्यों घन-संयुत दामिनि के तन,
होत हैं पूषन के कर भूषन ॥ ६ ॥
मारग की रज तापित है अति।
केशव सीतहि सीतल लागति ॥

ज्यौं पद-पंकज ऊपर पाँयनि।
दै जो चलै तेहि ते सुखदायनि ॥ ७ ॥

प्रति पुर औ, प्रति ग्राम की, प्रति नगरन की नारि।
सीताजू को देखिके, बरनत हैं सुखकारि ॥ ८ ॥

वासों मृग-अंक कहैं, तोसों मृगनैनी सब,
वह सुधाधर, तुहूँ सुधाधर मानिए।
वह द्विजराज, तेरे द्विजराजि राजैं, वह
कलानिधि, तुहूँ कला-कलित बखानिए ॥
रत्नाकर के हैं दोऊ केवस प्रकास कर
अंवर-विलास कुवलय हित मानिए।
वाके अति सीत कर, तुहूँ सीता सीतकर,
चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिए ॥ ९ ॥

कलित कलंक-केतु, केतु-अरि, सेत गात,
भोग-योग को अयोग, रोग ही को थल सौं ॥
पून्यौई को पूरन पै प्रतिदिन दूनो
छन छन छीन होत छीलर को जल सौं।
चन्द्र सौं जो बरनत रामचंद्र की दुहाई
सोई मति मंद कवि केसव मुसल सौं।
सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति
सीताजू को मुख सखि केवल कमल सौं ॥ १० ॥

एक कहैं अमल कमल मुख सीताजू कौ
एक कहैं चंद्र-सम आनँद कौ कंद री।
होइ जौ कमल तौ रयनि में न सकुचै री
चंद जौ तौ बासर न होइ द्युति मंदरी॥
बासर ही कमल रजिन ही में चंद्र मुख
बासर हू रजिनै विराजै जगबंद री।
देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चंद
तातें मुख मुखै, सखी, कमलौ न चन्द री॥ ११॥

सीतानयन चकोर सखि रविबंशी रघुनाथ।
रामचन्द्र सिय कमल मुख, भलो बन्यो है साथ॥ १२॥

बहु बाग तड़ाग तरंगिनि तीर
तमाल की छाँह बिलोकि भली।
घटिका इक बैठत है सुख पाय
बिछाय तहाँ कुस कास अली॥
मग कौ श्रम श्रीपति दूरि करैं
सिय के सुभ बाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनकौ कहि केशव
चंचल चारु दृगंचल सों॥ १३॥

श्री रघुबर के इष्ट, अश्रु-बलित सीता-नयन।
साँची करी अदृष्ट, झूँठी उपमा मीन की॥ १४॥

मारग यौं रघुनाथ जू, दुख सुख सब ही देत।
चित्रकूट पर्वत गए, सोदर सिया समेत॥ १५॥

---

(५) पंचवटी-स्थित राम

केशव कहे अगस्त्य के पंचवटी के तीर।
पर्णकुटी पावन करी, रामचंद्र रणवीर ॥ १ ॥

फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल-कुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी पियरस पूरी, वन वन प्रति नाचति डोलैं ॥
सारी शुक पंडित, गुणगण-मंडित, भावनि मैं अरथ बखानैं।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मदन सरति मधु सब जानैं ॥ २ ॥

सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीच घटीहूँ घटी, जग जीव यतीन की छूटी तटी ॥
अघ-ओघ की बेरी कटी बिकटी, निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी।
चहुँओरन नाचति मुक्तिनटी, गुण धूरजटी वनपंचवटी ॥ ३ ॥

शोभत दंडक की रुचि बनी। भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी ॥
सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै ॥ ४ ॥
बेर भयानक सी अति लगै। अर्क-समूह जहाँ जगमगै ॥
नैनन को बहुरूपन ग्रसै। श्रीहरि की जनु मूरति लसै ॥ ५ ॥

राम

पांडव की प्रतिमा सम लेखौ।
अर्जुन भीम महामति देखौ ॥
है सुभगा सम दीपति पूरी।
सिन्दुर की तिलकावलि रूरी ॥ ६ ॥

राजति है यह ज्यौं कुलकन्या।
धाइ विराजति है सँग धन्या॥
केलि-थली जनु श्री गिरिजा की।
शोभ धरे शितकंठ प्रभा की॥ ७॥

अति निकट गोदावरी पाप-संहारिणी।
चल तरंग तुङ्गावली चारु संचारिणी।
अलि कमल-सौगंध लीला मनोहारिणी।
वहु-नयन देवेश शोभा मनो धारिणी॥ ८॥

रीति मनो अविवेक की थापी।
साधुन की गति पावत पापी॥
कंजज की मति सी बड़भागी।
श्री हरिमन्दिर सौं अनुरागी॥ ९॥

निपट पतिव्रत धरणी। जग जन के दुख हरणी।
निगम सदा गति सुनिए। अगति महापति गुनिए॥ १०॥

विषमय यह गोदावरी, अमृतन को फल देति।
केशव जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति॥ ११॥

सीता-हरण

छिद्र ताकि छुद्रराज लंकनाथ आइयो।
भिक्खु जानि जानकी सो भीख को बोलाइयो॥

सोच पोच मोचिकै सकोच भीम-वेख-को।
अंतरिच्छही करी ज्यों राहु चन्द्र रेख को ॥ १२ ॥

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की,
शिखा की धूमयोनि मध्य रेखा सुधाधाम की।
चित्र की सी पुत्रिका की रूरे बगरूरे माँहिं,
संबर छोड़ाइ लई कामिनी की काम की।
पाखंड की श्रद्धा, की मठश वस एकादसी,
लीन्ही कै स्वपचराज साखा सुद्ध साम की।
केशव अदृष्ट साथ जीवजोति जैसी, तैसी,
लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की ॥ १३ ॥

सीता

हा राम हा रमन हा रघुनाथ धीर।
लंकाधिनाथ वस जानहु मोहि वीर ॥
हा पुत्र लक्ष्मण छोड़ावहु वेगि मोहीं।
मार्तंडवंश-यश की सब लाज तोहीं ॥ १४ ॥

राम विलाप

निज देखौं नहीं शुभगीतहि सीतहि कारण कौन कहो अब हीं।
अति मोहित कै बन माँझ गई सुर मारग मैं मृग मारयो जहीं ॥
कटु बात कछू तुमसों कहि आई किधौं तेहि त्रास-डेराइ नहीं।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं ॥१५॥

सरिता एक केशव सोभ रई।
अवलोकि तहाँ चकवा चकई॥
उर में सिय प्रीति समाइ रही।
तिन सों रघुनायक बात कही॥ १६॥

अवलोकत हौं जबहीं जबहीं।
दुख होत तुम्हें तबहीं तबहीं॥
वह बैर न चित्त कछू धरिए।
सिय देहु बताइ कृपा करिए॥ १७॥

शशि के अवलोकन दूरि किए।
जिनके मुख की छबि देख जिए॥
कृत चित्त चकोर कछूक धरौ।
सिय देहु बताय सहाय करौ॥ १८॥

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक लिए हरि कै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षण जानि तजे डरिकै॥
सुनि साधु तुम्हें हम बूझड आए रहे मन मौन कहा धरि कै।
सिय को कछु सोध कहौ करुणामय हे करुणा करुणा करिकै॥१९॥

हिमांशु सूर सो लगै सो बात वज्र सी बहै।
दिशा लगे कृशानु ज्यों विलेप अंग को दहै॥
विशेष कालराति सो कराल राति मानिए।
वियोग सीय को न काल लोकहार जानिए॥ १०॥

वर्षा-वर्णन

देखि राम वरषा ऋतु चाई। रोम रोम वहुधा दुखदाई॥
आसपास तम की छवि छाई। राति दिवस कछु जानि न जाई॥२१॥
मंद मंद धुनि सों घन गाजैं। तूर तार जनु आवझ बाजैं॥
ठौर ठौर चपला चमकै यों। इन्द्रलोक तिय नाचति हैं ज्यों॥२२॥
सोहैं घन श्यामल घोर घनैं। मोहैं तिनमैं बकपाँति मनैं॥
शंखावलि पी बहुधा जल सों। मानो तिनकौ उगलै बल सों॥२३॥
शोभा अति शक्र शरासन मैं। नाना द्युति दीसति है घन मैं॥
रत्नावलि सी दिवि द्वार भनो। वर्षागम बाँधिय देव मनो॥२४॥

घन घोर घने दशहूँ दिशि छाए।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आए॥
अपराध बिना छिति के तन ताए।
तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाए॥२५॥

अति गाजत, बाजत दुंदुभि मानौ।
निरघात सबै पविपात बखानौ॥
धनु है यह गौर-मदाइनि नाहीं।
शर जाल बहै जलधार वृथा हीं॥२६॥

भट चातक दादुर मोर न बोले।
चपला चमकै न, फिरै खँग खोले॥

द्युतिवंतन कौं विपदा बहु कीन्हीं।
धरनी कहँ चंद्रवधू धरि दीन्हीं॥ २७॥
तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर की सी।
उर मैं हम चंद्रकला सम दीसी॥
वरषा न सुनैं किलकै किल काली।
सब जानत हैं महिमा अहिमाली॥ २८॥
भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख-सुखमा शशी की, नैन
अमल कमल दल दलित निकाई है॥
केसौदास प्रबल करेनुका गमनहर,
मुकुत सु हंसक सबद सुखदाई है।
अंबर-बलित मति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका कि बरखा हरखि हिय आई है॥ २९॥
बरनत केसव सकल कवि, विषम-गाढ़ तम सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यौं भई, संतत मिथ्या दृष्टि॥ ३०॥
कल-हंस, कलानिधि, खंजन, कंज, कछू दिन केसव देखि जिए।
गति, आनन, लोचन, पायन के अनुरूपक से मन मानि लिए॥
यहि काल कराल तें शोधि सबै हठिकै बरषा मिस दूरि किए।
अब धौं बिन प्रान प्रिया रहिहैं कहि कौन हितू अवलंबि हिए॥३१॥

बीते वर्षा काल यौं, आई शरद सुजाति।
गए अँध्यारी होति ज्यौं, चारु चाँदनी राति ॥ ३२ ॥

दंतावलि कुंद समान गनौ। चंद्रानन कुंतल औंर घनौ॥
भौंहैं धनु खंजन नैन मनौ। राजीवनि ज्यों पद-पानि भनौ ॥३३।
हारावलि नीरज हीय रमैं। हैं लीन पयोधर अंबर-में॥
पाटीर जोन्हाइहि अंग धरे। हंसीगति केशव चित्त हरे ॥३४॥
श्रीनारद की दरसै मति सी। लोपै तमता अपकीरति सी॥
मानौ पतिदेवन की रति कौ। सतमारग की समुझै गति कौ ॥३५॥

लक्ष्मण दासी वृद्ध सी, आई शरद सुजाति।
मनहुँ जगावन कौं हमहिं, बीते वर्षा - राति ॥ ३६ ॥

(६) हनुमान् लंका-गमन

हरि कैसो वाहन, की विधि कैसो हंस हंस,
लीक सी लिखत नभ-पाहन के अंक कों।
तेज-को-निधान, राम-मुद्रिका-विमान कैधौं,
लच्छण को बाण छूट्यो रावन निशंक कों।
गिरि-गजगंड तें उड़ान्यो सुवरन अलि,
सीता पद पंकज सदा कलंक-रंक कों।
हवाई सी छूटी केसोदास आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक कों॥ १॥

उदधि नाकपतिशत्रु को, उदित जानि बलवंत।
अंतरिच्छ हीं लच्छि-पद, अच्छ छुयो हनुमंत॥ २॥

बीच गए सुरसा मिली, और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि॥ ३॥

कछु गाति गए करि दंश दशा सी।
पुर माँझ चले वनराजि विलासी॥
जब हीं हनुमंत चले तजि शंका।
मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका॥ ४॥

लंका

कहि मोहि उलंघि चले तुम को हौ ?
अति सूच्छम रूप धरे मन मोहौ !
पठए केहि कारण, कौन चले हौ ?
सुर हौ किधौं कोऊ सुरेश भले हौ ॥ ५ ॥

हनुमान्

हम बानर हैं रघुनाथ पठाए।
तिनकी तरुनी अवलोकन आए ॥

लंका

हति मोहि महामति भीतर जैए।

हनुमान

तरुणिहि हते कब लौं सुख पैए ॥ ६ ॥

लंका

तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहौ।
हठ कोटि करौ घरहीं फिरि जैहौ ॥
हनुमंत बली तेहि थापर मारी।
तजि देह भई तब ही बर नारी ॥ ७ ॥

लंका

धनदपुरी हौं. रावन लीन्ही।
बहु विधि पापन के रस भीनी॥
चतुरानन चित चिंतन कीन्हो।
करु करुणा करि मो कहँ दीन्हो॥ ८॥

जब दसकंठ सिया हरि लैहै।
हरि हनुमंत विलोकन ऐहै॥
जब वह तोहि हते तजि संका।
तब प्रभु होइ विभीषण लंका॥ ९॥

चलन लगौ जबही तब कीजौ।
मृतकशरीरहि पावक दीजौ॥
यह कहि जात भई वह नारी।
सब नगरी हनुमंत निहारी॥ १०॥

तब हरि रावण सोवत देख्यो।
मणिमय पलका की छवि लेख्यो॥
तहँ तरुणी बहु भाँतिन गावैं।
बिच बिच आवझ बीन बजावैं॥ ११॥

मृतक चिता पर मानहु मोहैं।
चहुँ दिशि प्रेतवधू मन मोहैं॥

जहँ जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो।
सिय बिन है सिगरो घर सूनो ॥ १२ ॥
कहुँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं ॥
कहूँ यक्षिणी पक्षिणी को पढ़ावैं।
नगी-कन्यका पन्नगी को नचावैं ॥ १३ ॥
पियै एक हाला, गुहै एक माला।
बनी एक बाला नचै चित्रशाला ॥
कहूँ कोकिला कोक की कारिका कौं।
पढ़ावै सुआ लै सुकी सारिका कौं ॥ १४ ॥
फिरयो देखिकै राजशाला सभा कों।
रह्यौ रीझिकै बाटिका की प्रभा कों ॥
फिरयो और चौहूँ चितै शुद्ध गीता।
विलोकी भली सिंसिपा-मूल सीता ॥ १५ ॥
धरे एक बेनी, मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सों काढ़ि डारी ॥
सदा रामनामै रटै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी ॥ १६ ॥
ग्रसी बुद्धि सी चित्त चिंतानि मानौं।
किधौं जीभ दंतावली मैं बखानौं ॥

किधौं घेरिकै राहु-नारीन लीनी।
कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनी॥ १७॥

किधौं जीव की जोति मायान लीनी।
अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी॥
मानों संबरस्त्रीन मैं काम-वामा।
हनूमान ऐसी लखी राम-रामा॥ १८॥

तहाँ देव-द्वेषी दसग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महा दुःख पायो।
सबै अंग लै अंग ही में दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रु धारा बहायो॥ १९॥

रावण

सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै।
इतो सोच तौ राम काजै न कीजै॥
बसै दंडकारण्य देखै न कोऊ।
जो देखै महा बावरो होय सोऊ॥ २०॥

कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै।
हितू नग्न मुंडीन ही को सदा है॥
अनाथै सुन्यौ मैं अनाथानुसारी।
बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी॥ २१॥

तुम्हैं देवि दूषै हितू ताहि मानै।
उदासीन तोसों सदा ताहि जानै।
महानिर्गुणी नाम ताको न लीजै।
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै ॥ २२ ॥

अदेवी नृदेवीन की होहु रानी।
करैं सेव बानी मघौनी मृड़ानी ॥
लिए किन्नरी किन्नरी गीत गावैं।
सुकेसी नचैं उर्वशी मान पावैं ॥ २३ ॥

सीता

तृण बिच दै बोली सीय गंभीर बानी।
दसमुख सठ को तू ? कौन की राजधानी ? ॥
दशरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निसिचर बपुरा तू क्यों न स्यौं मूल नासै ॥ २४ ॥

अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी।
खल खर सर धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी ॥
बिड़-कन घन घूरे भच्छि क्यों बाज जीवै ?
सिवसिर-ससि-श्री कों राहु कैसे सो छीवै ॥ २५ ॥

उठि उठि सठ ह्याँ तैं भागु तौ लौं अभागे।
मम बचन बिसर्पी सर्प जौ लौं न लागे।

विकल सकुल देखौं आसु ही नाश तेरौ।
निहट मृतक तोकौं रोष मारै न मेरौ॥ २६॥

अवधि दई द्वै मास की, कह्यो राच्छसिन बोलि।
ज्यों समुझै समुझाइयौ, युक्ति-छुरी सों छोलि॥ २७॥

देखि देखि कै असोक, राजपुत्रिका कह्यौ।
देहि मोहि आगि तैं जो अंग आगि ह्वै रह्यो॥
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई।
आस पास देखि कै उठाय हाथ कै लई॥ २८॥

जब लगी सियरी हाथ। यह आग कैसी नाथ॥
यह कह्यौ लखि तब ताहि। मनि-जटित मुँदरी आहि॥२६॥

जब बाँचि देख्यौ नाँउ। मन परयो संभ्रम भाउ॥
आवाल ते रघुनाथ। यह धरी अपने हाथ॥ ३०॥

बिछुरी सो कौन उपाउँ। केहि आनियो यहि ठाउँ॥
सुधि लहौं कौन उपाउँ। अब काहि बूझन जाउँ॥ ३१॥

चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियौ आकास॥
तहँ शाख बैठो नीठि। तब परयो बानर डीठि॥ ३२॥

तब कह्यौ, को तू आहि। सुर असुर मो तन चाहि॥
कै यच्छ, पच्छ-विरूप। दसकंठ बानर रूप॥ ३३॥

कहि आपनो तू भेद। न तु चित्त उपजत खेद ॥
कहि वेगि वानर, पाप। न तु तोहि देहौं शाप ॥
डरि वृच्छ शाखा भूमि। कपि उतरि आयो भूमि ॥ ३४ ॥

कर जोरि कह्यौ; 'हौं पवन-पूत।
जिय जननि जानु रघुनाथ-दूत' ॥
'रघुनाथ कौन?' 'दशरत्थ-नन्द।'
'दशरत्थ कौन?' 'अज-तनय-चंद' ॥ ३५ ॥

केहि कारण पठए यहि निकेत?'
'निज देन लेन संदेश हेत ॥'
'गुन रूप सील सोभा सुभाउ।
कछु रघुपति के लच्छन बताउ' ॥ ३६ ॥

'अति यदपि सुमित्रा-नंद भक्त।
अति सेवक हैं, अति सूर सक्त ॥
अरु यदपि अनुज तीन्यौ समान'।
पै तदपि भरत भावत निदान ॥ ३६ ॥

ज्यों नारायण उर श्री बसंति।
त्यों रघुपति उर कछु द्युति लसंति ॥
जग जितने हैं सब भूमि भूप।
सुर असुर न पूजैं राम रूप ॥ ३८ ॥

सीता

मोहिं परतीति यहि भाँति नहिं आवई।
प्रीति कहि धौं सु नर वानरनि क्यों भई॥
बात सब बर्णि परतीति हरि त्यों दई।
आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुंदरी लई॥३९॥

आँसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहिं, बरनति है बहु भाइ॥४०॥

यह सूरकिरण तम दुःखहारि।
ससिकला किधौं उर सीतकारि॥
कल कीरति सी सुभ सहित नाम।
कै राज्यश्री यह तजी राम॥४१॥

कै नारायन उर सम लसंति।
सुभ अंकन ऊपर श्री बसंति॥
वर विद्या सी आनंददानि।
युत अष्टापद मनु शिवा मानि॥४२॥

जनु माया अच्छर सहित देखि।
कै पत्री निश्चयदानि लेखि॥
प्रिय प्रतीहारणी सी निहारि।
श्री रामोजय उच्चारकारि॥४३॥

पिय पठई मानौ सखि सुजान।
जगभूषण कौ भूषण-निधान।
निजु आई हमकौं सीख देन।
यह किधौं हमारो मरम लेन॥ ४४॥

सुखदा सिखदा अर्थदा, यसदा रसदातारि।
रामचंद्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु-नारि॥ ४५॥

बहुबरना सहज प्रिया, तम-गुनहरा प्रमान।
जग-मारग-दरसावनी, सूरज-किरन समान॥ ४६॥

श्रीपुर मैं, वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की, को करिहै परतीति॥ ४७॥

कहि कुसल मुद्रिके! रामगात।
पुनि लक्ष्मण सहित समान तात॥
यह उत्तर देति न बुद्धिवंत।
केहि कारण धौं हनुमंत संत॥ ४८॥

हनुमान

तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम॥ ४९॥

दीरघ दरीन बसैं केसोदास केसरी ज्यौं,
केसरी कौ देखि बन करी ज्यौं कँपत हैं।

बासर की संपति उलूक ज्यौं न चितवत,
चकवा ज्यौं चंद चितै चौगुनो चँपत हैं।
केका सुनि व्याल ज्यौं बिलात जात घनश्याम,
घनन की घोरनि जवासो ज्यौं तपत हैं।
भौंर ज्यौं भँवत वन योगी ज्यौं जगत रैनि,
साकत ज्यौं राम नाम तेरोई जपत हैं॥ ५० ॥

दुख देखे सुख होहिगो सुक्ख न दुःख विहीन।
जैसे तपसी तप तपे होत परमपद लीन॥ ५१ ॥

बरषा वैभव देखिकै देखी सरद सकाम।
जैसे रन में काल-भट भेंटि भेंटियत बाम॥ ५२ ॥

दुःख देखिकै देखिहौ तव सुख आनँदकंद।
तपन ताप तपि द्यौस निसि जैसे शीतल चंद॥ ५३ ॥

अपनी दसा कहा कहौं दीप दसा सी देह।
जरत जाति बासर निसा केसव सहित सनेह॥ ५४ ॥

कछु जननि दे परतीति जासों रामचंद्रहि आवई।
सुभ सीस की मनि दई, यह कहि, 'सुयस तव जग गावई॥
सब काल ह्वैहौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ।
सुत आजु तें रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ' ॥५५॥

कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो।
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि सँहारियो॥

रन मारि अच्छकुमार, बहु विधि इन्द्रजित सों युद्ध कै ।
अति ब्रह्मसस्त्र प्रमान मानि सो वश्य भो मन सुद्ध कै ॥५६ ॥
'रे कपि कौन तू ?' "अच्छ को घातक दूत बली रघुनन्दन जू को।"
'को रघुनंदन रे ?' 'त्रिसिरा-खरदूषन-दूषन भूषन भू को ॥'
'सागर कैसे तर्यो ?' 'जैसे गोपद', 'काज कहा ?' 'सिय चोरहि देखों।'
'कैसे बँधायो ?' 'जो सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखों' ॥५७॥

रावण

कोरि कोरि यातनानि फोरि फारि मारिए ।
काटि काटि फारि माँसु बाँटि बाँटि डारिए ॥
खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहु रे ।
पौरि टाँगि रुंड मुंड लै उड़ाइ जाहु रे ॥ ५८ ॥

विभीषण

दूत मारिए न राजराज, छाड़ि दीजई ।
मंत्रि मित्र पूँछि कै सो और दंड कीजई ॥
एक रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई ।
बुंद सोखि गो कहा, कहा समुद्र छीजई ॥ ५९ ॥
तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि बाससी ।
लै अपार रार ऊन दून सूत सौं कसी ॥
पूछ पौनपून की सँवारि वारि दी जहीं ।
अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात भो तहीं ॥ ६० ॥

धाम धामनि आगि की बहु ज्वाल-माल विराजहीं।
पौन के झकझोर तैं झँझरी झरोखन भ्राजहीं॥
बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं।
छुद्र ज्यों विपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं॥ ६१॥

जटी अग्निज्वाला अटा सेत है यों।
सरत्काल के मेघ संध्या समे ज्यों॥
लगी ज्वाल धूमावली नील राजै।
मनौ स्वर्ण की किंकिणी नाग साजै॥ ६२॥

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े।
मनौ ईस-रोपाग्नि मैं काम डाढ़े॥
कहूँ कामिनी ज्वालमालानि भोरैं।
तजैं लाल सारी अलंकार तोरैं॥ ६३॥

कहूँ भौन रातै रचे धूम-छाहीं।
ससी सूर मानौं लसैं मेघ माहीं॥
जरै सस्त्रसाला मिली गंधमाला।
मलै अद्रि मानौ लगी दाव-ज्वाला॥ ६४॥

चली भागि चौहूँ दिसा राजरानी।
मिली ज्वाला-माला फिरै दुःखदानी॥
मनो ईस-बानावली लाल लोलैं।
सबै दैत्यजायान के संग डोलैं॥ ६५॥

लंक लगाइ दई हनुमंत विमान बचे अति उच्चरुखी है।
पावक में उचटैं बहुधा मनि, रानी रटैं 'पानी-पानी' दुखी हैं॥
कंचन को पघिल्यो पुर पूर, पयोनिधि में पसरो सो सुखी है।
गंग हजारमुखी गुनि केसौ, गिरा मिली मानौ अपारमुखी है॥६६॥

हनुमत लाई लंक सब, बच्यो विभीषन धाम।
ज्यौं अरुनोदय बेर में, पंकज पूरब याम॥६७॥

(७) राम-सेना वर्णन

तिथि विजयदसमी पाइ। उठि चले श्री रघुराइ।
हरि यूथ यूथप संग। बिन पच्छ के ते पतंग ॥ १ ॥

सुग्रीव

कहै केसौदास तुम सुनो राजा रामचंद्र,
रावरी जवहि सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसिहि आसपास,
दिसि दिसि बरषा ज्यों बलनि बलति है ॥
पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गन,
गजराज मृगराज-राजिनि दलति है।
जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आइ जात,
पुरइनि के से पात पुहुमी हलति है ॥ २ ॥

लक्ष्मण

भार के उतारिवे को अवतरे रामचंद्र,
किधौं केसौदास भूरि भरन प्रबल दल।
टूटत हैं तरुवर, गिरे गन गिरिवर,
सूखे सव सरवर सरिता सकल जल ॥
उचकि चलत हरि दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।
लचकि लचकि जात सेस के असेस फन,
भागि गई भोगवती, अतल वितल तल ॥ ३ ॥

बल-सागर लछिमन सहित, कपि-सागर रनधीर।
यस-सागर रघुनाथ जू, मेले सागर तीर ॥ ४ ॥

(८) अंगद-रावण संवाद

अंगद कूदि गए जहाँ आसनगत लंकेस।
मनु मधुकर करहाट पर, शोभित श्यामल वेस ॥ १ ॥

प्रतिहार

पढ़ौ विरंचि ! मौन वेद, जीव ! सोर छंडि रे।
कुवेर ! बेर कै कही, न यच्छ भीर मंडि रे ॥
दिनेस ! जाइ दूरि बैठु नारदादि संगहीं।
न बोलु चंद ! मंदबुद्धि इंद्र की सभा नहीं ॥ २ ॥

अंगद यौं सुनि बानी। चित्त महारिस आनी ॥
ठेलि कै लोग अनैसे। जाइ सभा मह बैसे ॥ ३ ॥
'कौन हो, पठए सो कौने, ह्याँ तुम्हैं कह काम है' ?
'जाति वानर, लंकनायक-दूत, अंगद नाम है' ॥
'कौन है वह बाँधि कै हम देह पूछि सबै दही ?'
'लंक जारि, सँहारि अच्छ, गयो सो बात वृथा कही' ॥ ४ ॥

'कौन के सुत ?' 'बालि के' 'वह कौन बालि' न जानिए ?—
काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए ॥'
'है कहाँ वह वीर ?', अंगद देवलोक बताइयो।
'क्यों गयो ?' 'रघुनाथ-बान-बिमान बैठि सिधाइयो' ॥ ५ ॥

'लंकनायक को?' 'विभीषण, देव-दूसण को दहै।
'मोहि जीवत होहि क्यों?' 'जग तोहि जीवत को कहै?'
'मोहिं को जग मारिहै?' 'दुर्बुद्धि तेरिय जानिए।'
'कौन बात पठाइयो कहि वीर बेगि बखानिए' ॥ ६ ॥

अङ्गद

श्री रघुनाथ कौ बानर केसव आयौ हो एकु न काहू हयौ जू।
सागर को मद झारि, चिकारि, त्रिकूट के देह बिहार छयौ जू ॥
सीय निहारि सँहारि कै राच्छस सोक असोक बनीहि दयौ जू।
अच्छकुमारहिं मारि कै, लंकहिं जारिकै, नीकेहि जात भयौ जू ॥७॥

राम राजान के राज आए इहाँ
धाम तेरे महा भाग जागे अबै।
देवि मंदोदरी, कुंभकर्णादि दै
मित्र मंत्री जिते पूँछि देखौ सबै ॥
राखिजै जाति कों, पाँति को, बंशकों
साधिजै लोक मैं लोक पर्लोक कों।
आनि कै पाँ परौ देस लै, कोस लै,
आसुहीं ईस सीता चलै ओक कों ॥ ८ ॥

रावण

लोक लोकेस स्यौं सोचि ब्रह्मा रचे
आपनी आपनी सींव सो सो रहै।

चारि बाहैं धरे विष्णु रच्छा करैं,
बात साँची यहै वेदवाणी कहै ॥
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेस स्यौं—
विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रजू संहरैं।
ताहि हौं छाँड़ि कै पायँ काके परौं
आजु संसार तौ पायँ मेरे परै ॥ ९ ॥

'राम को काम कहा ?' 'रिपु जीतहि'
'कौन कबै रिपु जीत्यो कहाँ ?
'बालि बली', 'छल सों, 'भृगुनंदन
गर्व हरयो', 'द्विज दीन महा ॥'
'दीन सो क्यों ? छिति छत्र हत्यो
बिन प्राणनि हैहयराज कियो।'
'हैहय कौन ?' 'वहै, बिसरयो ? जिन
खेलत ही तुम्हें बाँधि लियो' ॥ १० ॥

अंगद

सिंधु तरयो उनको बनरा, तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बँध्यो, उन बारिधि बाँधि कै बाट करी ॥
अजहूँ रघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलनि तूलनि पूँछि जरी न जरी, जरी लंक जराइ जरी ॥ ११ ॥

रावण

कील सुखेन हनू उनके नल, और सबै कपि-पुंज तिहारे।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनो पदु लै, पितु जालगि मारे॥
तोसें सपूतहि जाइ कै, बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरौ सबै दल, आजुहि क्यों न हनै बपमारे॥१२॥

जो सुत अपने बाप को, बैर न लेइ प्रकास।
तासौं जीवत ही मरयौ, लोक कहै तजि आस॥ १३॥

अंगद

इनकौ बिलगु न मानिए, सुनि रावन पल आंधु।
पानी पावक पवन प्रभु, ज्यौं असाधु त्यौं साधु॥ १४॥

रावण

उरसि अंगद लाज कछु गहौ। जनकघातक-बात वृथा कहौ॥
सहित लछमण रामहिं संहरों। सकल बानर राज तुम्हैं करौं॥१५॥

अंगद

सत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूध-बिधि नूत कबहूँ न डर आनहीं॥
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू।
राखि भुज सीस, तब और कहँ राखहू॥ १६॥

रावण

महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै ।
प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै ॥
छपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको ।
करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको ॥ १७ ॥
सका मेघमाला, सिखी पाककारी ।
करै कोतवाली महादंडधारी ॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके ।
कहा बापुरो सत्रु सुग्रीव ताके ॥ १८ ॥

रावण

पेट चढ़यो, पलना पलिका चढ़ि
पालकि हू चढ़ि मोह मढ़यो रे ।
चौक चढ़यो, चित्रसारी चढ़यो,
गजि बाजि चढ़यो गढ़-गर्व चढ़यो रे ॥
व्योम बिमान चढ़यो ई रह्यो
कहि केसव सो कबहूँ न पढ़यो रे ।
चेतत नाहिं रह्यो चढ़ि चित्त सों,
चाहत मूढ़ चिताहू चढ़यो रे ॥ १९ ॥

रावण

निकारयो जो भैया, लियो राज जाको ।
दियो काढ़ि कै जू कहा त्रास ताको ॥

लिए बानराली कहौं बात तोसों ।
सो कैसे लरै राम संग्राम मोसों ॥ २० ॥

अङ्गद

हाथी न, साथी न, घोरे न, चेरे न, गाउँ न, ठाउँ को ठाउँ बिलैहै ।
तात न मात, न पुत्र, न मित्र, न वित्त, न तीय कहीं सँग रैहै ॥
केसव काम को राम बिसारत और निकाम न कामहिं ऐहै ।
चेति रे चेति अजौं चित अंतर, अंतकलोक अकेलोई जैहै ॥ २१ ॥

रावण

डरै गाय विप्रै, अनाथै जो भाजै ।
परद्रव्य छाँड़ै, परस्त्रीहि लाजै ॥
परद्रोह जासौं न होवै रती को ।
सु कैसे लरै वेष कीन्हे यती को ॥ २२ ॥

गेंद करेउँ मैं खेल को हरिगिरि केसौदास ।
शीश चढ़ाए आपने, कमल, समान सहास ॥ २३ ॥

अंगद

जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिवर,
ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं ।
काटे जो कहत सीस, काटत घनेरे घाव,
मगर के खेले कहा भट पद पावहीं ॥

जीत्यो जो सुरेस रन, साप ऋषि-नारि ही कों,
समुझहु हम द्विज नाते समुझावहीं।
गहौ राम-पायँ, सुख पाइ करैं तपी तप,
सीताजू कों देहु, देव दुंदुभी बजावहीं ॥ २४ ॥

रावण

तपी जपी विप्रनि छिप्र ही हरौं।
अदेव-द्वेषी सब देव संहरौं ॥
सिया न देहौं, यह नेम जी धरौं।
अमानुषी भूमि अवानरी करौं ॥ २५ ॥

अंगद

पाहन तैं पतिनी करि पावन, टूक कियौ हर को धनु को रे?
छत्र-विहीन करी छन में छिति, गर्व हरयो तिनके बल को रे?
पर्वत पुंज पुरैनि के पात समान तरे, अजहूँ धरको रे?
होइँ नरायन हूँ पै न ये गुन, कौन इहाँ नर वानर को रे ॥ २६ ॥

रावण

देहिं अंगद राज तोकहँ, मारि वानरराज कों।
बाँधि देहिं विभीषनै अरु फोरि सेतु-समाज कों ॥
पूँछ जारहिं अच्छरिपु की, पाइँ लागहिं रुद्र के।
सीय कों तब देहुँ रामहिं, पार जाइ समुद्र के ॥ २७ ॥

अंगद

लंक लाइ गयौ बली हनुमंत, संतन गाइयो।
सिंधु बाँधत सोधि कै नल छीर छीट बहाइयो॥
ताहि तोहिं समेत अंध, उखारि हौं उलटी करौं।
आजु रात कहाँ विभीषण बैठिहैं, तेहितैं डरौं॥ २८॥
अंगद रावन को मुकुट, लेकरि उड्यो सुजान।
मनौ चल्यो यमलोक कों, दस सिर को प्रस्थान॥ २९॥

(६) राम-रावण युद्ध

रावनै चले, चले ते धाम धाम ते सबै।
साजि साजि साज सूर, गाजि गाजिकै तबै॥
दीह दुंदुभी अपार भाँति भाँति बाजहीं।
युद्धभूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दंति राजहीं॥ १॥

इंद्र श्रीरघुनाथ को रथहीन भूतल देखिकै।
वेगि सारथि सों कहेउ रथ जाहि लै सुविशेष कै॥
तून अच्छय, बाण स्वच्छ, अभेद लै तनत्रान को।
आइयो रणभूमि मैं करि अप्रमेय प्रमान को॥ २॥

कोटि भाँतिन पौन तें, मन तें महा लघुता लसै।
वैठिकै ध्वज अग्र श्रीहनुमंत अंकत ज्यों हँसै॥
रामचंद्र प्रदच्छिना करि दच्छ ह्वै जबहीं चढ़े।
पुष्प वर्षि बजाय दुंदुभि देवता बहुधा बढ़े॥ ३॥

राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावन के बढ्यो।
बीस बाहुन की सरावलि व्योम भूतल सौं मढ्यो॥
सैल ह्वै सिकता गए सब, दृष्टि के बल संहरे।
ऋच्छ बानर भेदि तच्छन लच्छधा छतना करे॥ ४

बानन साथ बिंधे सब बानर।
जाय परे मलयाचल की धर॥

सूरजमंडल मैं एक रोवत।
एक अकासनदी मुख धोवत ॥ ५ ॥
एक गए यमलोक सहे दुख।
एक कहैं भव भूतन सों सुख ॥
एक ते सागर माँझ परे मरि।
एक गए बड़वानल में जरि ॥ ६ ॥
श्रीलक्ष्मण कोप कर्‌यो जबहीं।
छोड़यो सर-पावक को तबहीं ॥
जार्‌यो सर-पंजर छार कर्‌यो।
नैऋत्यन को अति चित्त डर्‌यो ॥ ७ ॥
दौरे हनुमंत बली बल सों।
लै अंगद संग सबै दल सों ॥
मानो गिरिराज तजे डर को।
घेरैं चहुँ ओर पुरंदर को ॥ ८ ॥
अंगद रनअंगन सब अंगन मुरझाइ कै।
ऋच्छपतिहि अच्छरिपुहि लच्छगति बुझाइ कै ॥
बानरगन बानन सन 'केसव' जबहीं मुर्‌यो।
रावन दुखदावन जगपावन सम्मुहे जुर्‌यो ॥ ९ ॥
इन्द्रजीत-जीत आनि, रोकियो सुबान तानि।
छोड़ि तीन बीर बान कान के प्रमान आनि ॥

स्यों पताक काटि चाप चर्म वर्म मर्म छेदि।
जात भो रसातलै असेस कंठमाल भेदि ॥ १० ॥

सूरज मुसल, नील पट्टिस, परिघ नल,
जामवंत असि, हनू तोमर प्रहारे हैं।
परसा सुखेन, कुंत केशरी, गवय सूल,
विभीषण गदा, गज भिंदिपाल तारे हैं ॥
मोगरा द्विविद, तोर कटरा, कुमुद नेजा,
अंगद सिला, गवाक्ष विटप विदारे हैं।
अंकुस शरभ, चक्र दधिमुख, शेष शक्ति,
बान तिन रावन श्रीरामचंद्र मारे हैं ॥ ११ ॥

द्वैभुज श्रीरघुनाथ सौं, विरचे युद्ध विलास।
बाहु अठारह यूथपनि, मारे केसोदास ॥ १२ ॥

युद्ध जोई जहाँ भाँति जैसी करै
ताहि ताही दिसा रोकि राखै तहीं।
अस्त्र लै आपने शस्त्र काटै सबै।
ताहि केहूँ केहूँ घाव लागै नहीं ॥
दौरि सौमित्र लै बाण कोदंड ज्यों
खंड खंडी ध्वजा धीर छत्रावली।
शैल-शृंगावली छोड़ि मानौ उड़ी
एक ही बेर कै हंस-वंसावली ॥ १३ ॥

लछमन शुभ-लच्छन बुद्धि-बिचच्छन रावन सों रिस छोड़ि दई।
बहु बाननि छंडे जे सिर खंडे ते फिर मंडे सोभ नई॥
यद्यपि रनपंडित, गुन गन मंडित, रिपु-बल खंडित, भूलि रहे।
तजि मन वच कायक, सूर सहायक, रघुनायक सों बचन कहे॥
ठाढ़ो रण गाजत, केहुँ न भाजत, तन मन लाजत, सब लायक।
सुनि श्रीरघुनंदन, मुनिजन-बंदन, दुष्ट-निकंदन, सुखदायक॥
अब टरै न टारयो, मरै न मारयो, हौं हठि हारयो धरि सायक।
रावन नहिं मारत, देव पुकारत ह्वै अति आरत, जगनायक॥ १४॥

राम

जेहि सर मधु मद मरदि महासुर मर्दन कीन्हेउँ।
मारेउँ कर्कश नर्क, शंख हति शंख जो लीन्हेउँ॥
निष्कंटक सुर-कटक करयो कैटभ-वपु खंड्यो।
खर दूषन त्रिसरा कबंध तरु खंड विहंड्यो॥
कुंभकरण जेहि संहरयो पल न प्रतिज्ञा ते टरौं।
तेहि बान प्रान दसकंठ के कंठ दसौं खंडित करौं॥ १५॥

रघुपति पठयो आसुही, असुहर बुद्धिनिधान।
दससिर दसहूँ दिसन को, बलि दै आयो बान॥ १६॥

भुव भारहि संयुत राकस को
गए जाइ रसातल में अनुराग्यो।

जग में जय शब्द समेतहि केसव
राज विभीषन के सिर जाग्यो॥
मय-दानव नंदिनि के सुख सों
मिलि कै सिय के हिय को दुख भाग्यो।
सुर दुंदुभि सीस गजा सर राम को
रावन के सिर साथहि लाग्यो॥ १५॥

---

(१०) सीता की अग्नि-परीक्षा

सवस्त्रा सबै अंग शृंगार सोहैं।
विलोके रमा देव देवी विमोहैं॥
पिता-अंक ज्यों कन्यका शुभ्रगीता।
लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता॥ १॥

महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी।
कि संग्राम की भूमि में चंडिकासी॥
मनौ रत्नसिंहासनस्था सची है।
किधौं रागिनी राग पूरे रची है॥ २॥

गिरापूर में है पयोदेवता सी।
किधौं कंज की मंजु शोभा प्रकासी॥
किधौं पद्म ही में सिफाकंद सोहै।
किधौं पद्म के कोष पद्मा विमोहै॥ ३॥

कि सिंदूरशैलाग्र में सिद्ध कन्या।
किधौं पद्मिनी सूर-संयुक्त धन्या॥
सरोजासना है मनो चारु बानी।
जपा पुष्प के बीच बैठी भवानी॥ ४॥

मनौ औपधी-वृंद में रोहिणी सी।
कि दिग्दाह में देखिए योगिनी सी॥

धरापुत्र ज्यों स्वर्ण-माला प्रकासै।
मनो ज्योति सी तच्छकाभोग भासै॥ ५॥

आसावरी माणिक कुंभ शोभै अशोकलग्ना वनदेवता सी।
पालाशमाला कुसुमालि मध्ये वसंत लक्ष्मी शुभलक्षणा सी॥
आरक्तपत्रा शुभि चित्र पुत्री मनो विराजै अति चारुवेषा।
संपूर्ण सिंदूर प्रभा सुमंडी गणेश भालस्थल चंद्ररेखा॥ ६॥

है मणिदर्पण में प्रतिबिंब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुंज प्रताप मैं कीरति सी तप-तेजन में मनो सिद्धि विनीता॥
ज्यौं रघुनाथ तिहारियै भक्ति लसै उर केसव के शुभ गीता।
त्यौं अवलोकिय आनँदकंद हुतासन मध्य सवासन सीता॥ ७॥

---

(११) राम-राज्य वर्णन

अनंता सबै सर्वदा शस्ययुक्ता।
समुद्रावधिः सप्त ईती विमुक्ता॥
सदा वृक्ष फूले फले तत्र सांहैं।
जिन्हैं अल्पधी कल्प-साखी विमोहैं॥ १॥

सबै निम्नगा छीर के पूर पूरी।
भई कामगो सी सबै धेनु रूरी॥
सबै बाजि स्वर्बाजि ते तेज पूरे।
सबै दंति स्वर्दंति ते दर्प रूरे॥ ५॥

सबै जीव हैं सर्वदानन्द पूरे।
क्षमी संयमी विक्रमी साधु शूरे॥
युवा सर्वदा सर्व विद्या विलासी।
सदा सर्व संपति शोभा प्रकाशी॥ ३॥

चिरंजीव, संयोग-योगी अरोगी।
सदा एकपत्नीव्रती भोग भोगी॥
सबै शील-सौंदर्य-सौगंध धारी।
सबै ब्रह्मज्ञानी गुणी धर्मचारी॥ ४॥
सबै न्हान दानानि कर्म्माधिकारी।
सबै चित्त-चातुर्य्य चिन्ताप्रहारी॥

सवै पुत्र पौत्रादि के सुक्खसाजैं।
सबै भक्त माता पिता के विराजैं॥ ५॥
सबै सुन्दरी सुन्दरी साधु सोहैं।
शची सी सती सी जिन्हैं देखि मोहैं॥
सवै प्रेम की पुण्य की सङ्गिनी सी।
सबै चित्रिणी पुत्रिणी पद्मिनी सी॥ ६॥
भ्रमै संभ्रमी, यत्र शोकै, सशोकी।
अधर्म्मै अधर्मी, अलोकै अलोकी॥
दुखै तौ दुखी, ताप तापाधिकारी।
दरिद्रै दरिद्री, विकारै विकारी॥ ७॥

होम धूम मलिनाइ जहाँ। अति चंचल चलदल है तहाँ॥
बाल-नाश है चूड़ाकर्म। तीक्षणता आयुध के धर्म्म॥ ८॥
लेत जनेऊ भिक्षा दानु। कुटिल चाल सरितानि बखानु॥
व्याकरणै द्विज वृत्तिन हरै। कोकिलकुल पुत्रन परिहरै॥ ९॥
फागुहि निलज लोग देखिये। जुवा देवारी को लेखिये।
नित उठि वेभोई मारिये। खेलत केहूँ हारिये॥ १०॥

भावै जहाँ विभिचारी, वैद्य रमैं परनारी
द्विजगन दंडधारी, चोरी परपीर की।
मानिनीन ही के मन मानियत मान भंग,
सिंधुहि उलंघि जाति कीरति शरीर की॥

मूलै तौ अधोगतिन पावत है केसोदास,
मीचु ही सो है वियोग, इच्छा गंगानीर की।
बंध्या वासनानि जानु, विधवा सुवाटिकाई,
ऐसी रीति राजनीति राजे रघुबीर की॥ ११॥

कविकुल ही के श्रीफलन, उर अभिलाष समाज।
तिथि ही को क्षय होत है, रामचन्द्र के राज॥ १२॥

लूटिबे के नाते पाप-पट्टनै तौं लूटियतु,
तोरिबै को मोहतरु तोरि डारियतु है।
घालिबे के नाते गर्व घालियतु देवन के,
जारिबे के नाते अघ-ओघ जारियतु है॥
बाँधिबे के नाते ताल बाँधियतु केसोदास,
मारिबे के नाते तौं दरिद्र मारियतु है।
राजा रामचंद्र जू के नाम जग जीतियतु।
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है॥ १३॥

सब के कलपद्रुम के बन हैं, सब के बर बारन गाजत हैं।
सब के घर सोभित देवसभा, सब के जय दुंदुभि बाजत हैं॥
निधि सिद्धि विशेष अशेषनि सों, सब लोग सबै सुख साजत हैं।
कहि केशव श्रीरघुराज के राज सबै सुरराज से राजत हैं॥१४॥

---

[१२] रामाश्वमेध वर्णन

विश्वामित्र वसिष्ठ सौं, एक समय रघुनाथ।
आरंभो केशव करन, अश्वमेध की गाथ ॥ १ ॥

राम

मैथिली समेति तौ अनेक दान मैं दियो।
राजसूय आदि दै अनेक जज्ञ मैं कियो ॥
सीय-त्याग पाप ते हिये सों हौं महा डरौं।
और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं ॥ २ ॥

कश्यप

धर्म कर्म कछु कीजई, सफल तरुणि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ ॥ ३ ॥

करिये युतभूषण रूपरयी।
मिथिलेशसुता इक स्वर्णमयी ॥
ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये।
शुचि सों सब यज्ञ विधान किये ॥ ४ ॥

हयशालन ते हय छोरि लियो।
शशिवर्ण सो केशव शोभ रयो ॥
श्रुति स्यामल एक विराजतु है।
अलि ज्यों सरसीरुह लाजतु है ॥ ५ ॥

पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत पट्ट बाँधिय भाल।
भूपि भूषन सत्रुदषण छोड़ियौ तेहि काल॥
संग लै चतुरंग सैनहि शत्रुहंता साथ।
भाँति भाँतिन मान दै पठये सो श्रीरघुनाथ॥ ६॥
जात है जित बाजि केशव जात हैं तित लोग।
बोलि विप्रन दान दीजत यत्र तत्र सभोग॥
वेणु बीन मृदंग बाजत दुंदुभी बहु भेव।
भाँति भाँतिन होत मंगल देव से नरदेव॥ ७॥

राघव-की चतुरंग चमू-चय को गनै केशव राज-समाजनि ?
सूरतुरंगन के उरझैं पग तुंग पताकन की पट साजनि।
टूटि परैं तिन तैं मुकुता धरनी उपमा बरनी कविराजनि।
बिंदु किधौं मुखफेनन के. किधौं राजसिरी स्रवै मंगललाजनि॥८॥

राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छाई।
मानौ प्रताप-हुतासन-धूम सों केशवदास अकास न माई।
मेटिकै पंच प्रभूत किधौं विधि रेनुमयी नव रीति चलाई।
दुःख निवेदन को भव-भार कौं भूमि किधौं सुरलोक सिधाई॥९॥

नाद पूरि धूरि पूरि तूरि वन, चूरि गिरि,
शोषि शोषि जल भूरि भूरि थल गाथ की।
केसौदास आसपास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपति सब आपनेही हाथ की।

उन्नत नवाइ, नत उन्नत बनाइ भूप,
शत्रुन की जीतिकाऽति मित्रन के हाथ की।
मुद्रित समुद्र सात, मुद्रा नित मुद्रित कै,
आई दिशि दिशि जीति सेना रघुनाथ की ॥१०॥

दिशि विदिशनि अवगाहि कै, सुख ही केशवदास।
वालमीकि के आश्रमहिं, गयो तुरंग प्रकाश ॥११॥

दूरहि तें मुनि बालक धाये।
पूजित वाजि विलोकन आये ॥
भाल को पट्ट जहीं लव बाँच्यो।
बाँधि तुरंगम जयरस रांच्यो ॥१२॥

एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः।
तेन रामेण मुक्तोसौ वाजी गृह्णात्विमं बली ॥१३॥

घोर चमू चहुँ ओर तें गाजी।
कौनेहि रे यह बाँधिय वाजी ॥
बोलि उठे लव मैं यह बाँध्यो।
यों कहिकै धनुसायक साँध्यो ॥
मारि भगाइ दिये सिगरे यों।
मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यों ॥१४॥
योधा भागे वीर शत्रुघ्न आये।
कोदंड लीन्हे महा रोष छाये ॥

ठाढ़ो तहाँ एक बालै बिलोक्यो।
रोक्यो तहीं जोर, नाराच मोक्यो ॥१५॥

शत्रुघ्न

बालक छाँड़ि दे छाँड़ि तुरंगम।
तोसों कहा करौं संगर-संगम ॥
ऊपर वीर हिये करुना रस।
वीरहि विप्र हते न कहूँ यश ॥१६॥

लव

कछु बात बड़ी न कहौ मुख थोरे।
लव सों न जुरौ लवणासुर भोरे ॥
द्विजदोषन ही बल ताको सँहारयो।
मरिही जो रह्यो, सो कहा तुम मारयो ॥१७॥

रामबंधु बान तीनि छोड़ियो त्रिशूल से।
भाल में विशाल ताहि लागियो ते फूल से ॥

लव

घात कौन राजतात गात तैं कि पूजियो।
कौन शत्रु तैं हत्यौ जो नाम शत्रुहा लियो ॥१८॥
रोष करि बाण बाहु भाँति लव छंडियो।
एक ध्वज सूत युग तीनि रथ ख्वंडियो ॥

शत्रु दशरथ-सुत अस्त्र कर को धरै।
ताहि सियपुत्र तिल तूल सम खंडरै ॥१९॥

रिपुहा तब बाण वहै कर लीन्हो।
लवणासुर को रघुनंदन दीन्हो॥
लव के उर में उरझ्यो वह पत्री।
मुरझाइ गिर्‌यो धरणी महँ छत्री ॥२०॥

मोहे जब भूमि परे जबही।
जय-दुंदुभि बाजि उठे तबहीं।
भुव ते रथ ऊपर आनि धरे।
शत्रुघ्न सों यों करुणानि भरे।२१॥

घोड़ा तबहीं तिन छोरि लयो।
शत्रुघ्न हृ आनँद चित्त भयो॥
लैके लव कों ते चले जबहीं।
सीता पहँ बाल गये तबहीं ॥२२॥

बालक

सुनु मैथिली नृप एक को लव बाँधियो वर बाजि।
चतुरंग सैन भगाइकै तब जीतियो वह आजि॥
उर लागि गो शर एक कों भुव मैं गिर्‌यो मुरझाइ।
वह बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुंदुभीन बजाइ ॥२३॥

सीता गीता पुत्र की, सुनि सुनि भईं अचेत।
मनो चित्र की पुत्रिका, मन क्रम वचन समेत ॥२४॥

सीता

रिपु हाथ श्रीरघुनाथ को सुत क्यौं परैं करतार।
पति देवता सब काल तौ लव जी उठै यहि बार ॥
ऋषि हैं नहीं, कुश है नहीं, लव लेइ कौन छुड़ाइ।
बन माँझ टेर सुनी जहीं कुश आइयो अकुलाइ ॥२५॥

कुश

रिपुहि मारि संहारि दल, यम ते लेउँ छुड़ाइ।
लवहि मिलैहौं देखिहौ, माता तेरे पाँइ ॥२६॥
गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि बालि बली बर सो वर पेरयो।
ढाहि दिये शिर रावण के गिरि से गुरु जात न जातन हेरयो ॥
शूल समूल उखारि लियो लवणासुर पीछे ते आइ सो टेरयो।
राघव को दल मत्त करीश्वर अंकुश दै कुश केशव फेरयो ॥२७॥
कुश की टेर सुनी जहाँ, फूलि फिरे शत्रुघ्न।
दीप विलोकि पतंग ज्यों, तदपि भयो बहु विघ्न ॥२८॥
रघुनंदन को अवलोकतहीं कुश।
उर माँझ हयो शर शुद्ध निरंकुश ॥
ते गिरे रथ ऊपर लागतहीं शर।
गिरि ऊपर ज्यों गजराज कलेवर ॥२९॥

जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन ।
भाजि गये तबहीं भट के गन ॥
काढ़ि लियो जबही लव को शर ।
कंठ लग्यो तबहीं उठि सोदर ॥३०॥

मिले जो कुश लव कुशल सों, बाजि बाँधि तरुमूल ।
रणमहि ठाढ़े शोभिजैं, पशुपति गणपति तूल ॥३१॥

यज्ञमंडल मैं हुते रघुनाथ जू तेहि काल ।
चर्म अंग कुरंग को शुभ स्वर्ण की सँग बाल ॥
आस पास ऋषीश शोभित शूर सोदर साथ ।
आइ भग्गुल लोग बरणे युद्ध की सब गाथ ॥३२॥

भग्गुल

बालमीकि थल बाजि गयो जू ।
विप्र बालकन घेरि लयो जू ॥
एक बाँचि पट घोटक बाँध्यो ।
दौरि दीह धनुसायक साँध्यो ॥३३॥
भाँति भाँति सब सैन सँहार्‌यो ।
आप हाथ जनु ईश सँवार्‌यो ॥
अस्त्र शस्त्र तब बंधु जो धार्‌यो ।
खंड खंड करि ताकहँ डार्‌यो ॥३४॥

रोष वेष वह बाण लयो जू।
इन्द्रजीत लगि आपु दयो जू॥
काल रूप उर माँह हयो जू।
वीर मूर्छि तब भूमि भयो जू॥३५॥

वह वीर लै अरु बाजि। जबहीं चल्यो दल साजि॥
तब और बालक आनि। मग रोकियौ तजि कानि॥३६॥
तेहि मारियो तुव बंधु। तब ह्वै गयो सब अंधु॥
वह बाजि लै अरु वीर। रण मैं रह्यो रुपि धीर॥३७॥

बुधि बल विक्रम रूप गुण, शील तुम्हारे राम।
काकपक्षधर बाल द्वै, जीते सब संग्राम॥३८॥

राम

गुणगण प्रतिपालक, रिपुकुलघालक, बालक ते रनरंता।
दशरथ नृप को सुत, मेरो सोदर, लवणासुर को हंता॥
कोऊ द्वै मुनिसुत काकपक्षयुत, सुनियत है, जिन मारे।
यहि जगतजाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे॥३९॥

लक्ष्मण शुभलक्षण बुद्धि विचक्षण लेहु बाजि को शोधु।
मुनि शिशु जनि मारहु बंधु उधारहु क्रोध न करहु प्रबोधु॥
बहु सहित दक्षिणा दै प्रदक्षिणा चल्यो परम रणधीर।
देख्यो मुनिबालक सोदर उपज्यो करुणा अद्भुत वीर॥४०॥

लक्ष्मण को दल दीरघ देख्यो।
कालहु ते अति भीम विशेख्यो ॥

कुश

दो मैं कहौ सो कहा लव कीजे।
आयुध लैहौ कि घोटक दीजे ॥४१॥

लव

बूझत हौ तो यहै प्रभु कीजै।
मो असु दै, वरु अश्व न दीजै॥
लक्ष्मण को दल सिंधु निहारो।
ताकहँ बाण अगस्त्य तिहारो ॥४२॥
एक यहै घटि है अरि घेरे।
नाहिन हाथ शरासन मेरे॥
नेकु जही दुचितो चित कीन्हों।
सूर बड़ो इषुधी धनु दीन्हों ॥४३॥
लै धनु बाण चलो तब धायो।
पल्लव ज्यों दल मारि उड़ायो॥
यों दोउ सोदर सैन सँहारैं।
ज्यों वन पावक पौन बिहारैं ॥४४॥
भागत हैं भट यों लव आगे।
राम के नाम ते ज्यों अघ भागे॥

यूथप यूथ यों मारि भगायो।
बात बड़े जनु मेघ उड़ायो ॥ ४५ ॥

अति रोष रसै कुश केशव श्रीरघुनायक सों रणरीति रचैं।
तेहिं बार न बार भई बहु बारन खड्ग हनै न गनै बिरचैं ॥
तहँ कुंभ फटैं गजमोती कटैं ते चले बहु श्रोणित रोचि रचैं।
परिपूरण पूर पनारन तैं, जनु पीक कपूरन की किरचैं ॥४६॥

भगे चपे चमू चमूप छोड़ि छोड़ि लक्ष्मणै।
भगे रथी महारथी गयंद वृन्द को गणै ॥
कुशै लवै निरंकुशै बिलोकि बंधु राम को।
उठ्यो रिसाइ कै बली बँध्यो जो लाज-दाम को ॥४७॥

कुश

न हों मकराक्ष न हौं इंद्रजीत।
बिलोकि तुम्हें रण होहुँ न भीत ॥
सदा तुम लक्ष्मण उत्तमगाथ।
करौ जनि आपनि मातु अनाथ ॥ ४८ ॥

लक्ष्मण

कहौ कुश जो कहि आवति बात।
बिलोकत हौं उपवीतहि गात ॥
इते पर बालवयक्रम जानि।
हिये करुणा उपजै अति आनि ॥ ४९ ॥

विलोचन लोचत हैं लखि तोहिं।
तजौ हठ आनि भजौ किन मोहिं॥
क्षम्यों अपराध अजौं घर जाहु।
हिये उपजाउ न मातहि दाहु॥ ५०॥

हौं हतिहौं कबहूँ नहिं तोहीं। तू बरु बाणन बेधहि मोहीं।
बालक विप्र कहा हनिए जू। लोक अलोकन में गनिए जू॥५१॥

कुश

लक्ष्मण हाथ हथ्यार धरो। यत्न वृथा प्रभु को न करो।
हौं हय को कबहूँ न तजौं। पट्ट लिख्यौ सोइ बाँचि तजौं॥५२॥
बाण एक तब लक्ष्मण छंड्यो। चर्म धर्म बहुधा तिन खंड्यो।
ताहि हीन कुश चित्तहि सोहै। धूमभिन्न जनु पावक सोहै॥५३॥
रोष बेष कुश बाण चलायो। पौनचक्र जिमि चित्त भ्रमायो।
मोहि मोहि रथ ऊपर सोए। ताहि देखि जड़ जंगम रोए॥५४॥

विराम राम जानि कै भरत्थ सौं कथा कहैं।
विचारि चित्त माँझ वीर, वीर वे कहाँ रहैं॥
सरोष देखि लक्ष्मणै त्रिलोक तौ विलुप्त ह्वै।
अदेव देवता त्रसैं कहा ते बाल दीन द्वै॥ ५५॥

राम

जाहु सत्वर दूत लक्ष्मण हैं जहाँ यहि बार।
जाइ कै यह बात—वर्णहु रक्षियो मुनिमार॥

हैं समर्थ सनाथ वै असमर्थ और अनाथ।
देखिये कहूँ ल्याइयो मुनिबाल उत्तमगाथ ॥५६॥

भग्गुल आइ गए तबहीं बहु।
बार पुकारत आरत रत्नहु॥
वे बहुभाँतिन सैन सँहारत।
लक्ष्मण तौ तिनकों नहिं मारत॥ ५७॥

बालक जानि तजैं करुणा-करि।
वे अति ढीठ भये दल संहरि॥
केहुँ न भाजत गाजत हैं रण।
वीर अनाथ भए बिन लक्ष्मण॥ ५८॥

जानहु जै उनको मुनिबालक।
ये कोउ हैं जगती-प्रतिपालक॥
हैं कोउ रावण के कि सहायक।
कै लवणासुर के हित लायक॥ ५९॥

भरत

बालक रावण के न सहायक।
ना लवणासुर के हित लायक॥
हैं निज पातक-वृक्षन के फल।
मोहत हैं रघुवंशिन के बल॥ ६०॥

जीतहि को रणमाँझ रिपुघ्नहि।
को करै लक्ष्मण के बल विघ्नहि॥
लक्ष्मण सीय तजी जब ते वन।
लोक अलोकन पूरि रहे तन॥ ६१॥

छोड़ोइ चाहत ते तब ते तन।
पाइ निमित्त करेउ मन पावन॥
शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर लाजनि।
पूत भए तजि पाप समाजनि॥ ६२॥

पातक कौन तजी तुम सीता।
पावन होत सुने जग गीता॥
दोष विहीनहिं दोष लगावै।
सो प्रभु ये फल काहे, न पावै॥ ६३॥

हमहूँ तेहि वीरब ञाय मरैंगे।
सतसंमति दोष अशेष हरैंगे॥ ६४॥

वानर राक्षस ऋच्छ तिहारे।
गर्व चढ़े रघुवंशहि भारे॥
तालगि कै यह घात विचारी।
हौ प्रभु संतत गर्व-प्रहारी॥ ६५॥

क्रोध कै अति भरत अंगद संग संगर को चले।
जामवंत चले विभीषण और वीर भले भले।

को गनै चतुरंग सेनहिं रोदसी नृपता भरी।
जाइकै अवलोकियो रण मैं गिरे गिरि से करी॥ ६६॥

जामवंत विलोकि कै रण भीमभू हनुमंत।
श्रोण की सरिता वही सुअनंत रूप दुरंत॥
यत्र-तत्र ध्वजा पताका दीह देहनि भूप।
टूटि-टूटि परे मनौ बहु बात वृक्ष अनूप॥ ६७॥

पुंज कुंजर, सुभ्र स्यंदन सोभिजै सुठि-सूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीसनि पेलि सोनित पूर॥
ग्राहतुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म विसाल।
चक्र से रथचक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल॥ ६८॥

केकरे कर, बाहु मीन, गयंद सुंड भुजंग।
चीर चौर सुदेस केस सिवाल जानि सुरंग॥
बालुका बहु भाँति हैं मनिमाल जाल प्रकास।
पैरि पार भए ते द्वै मुनिबाल केसवदास॥ ६९॥

नामबरण लघु वेष लघु, कहत रीझि हनुमंत।
इतो बड़ो विक्रम कियो, जीते युद्ध अनंत॥ ७०॥

भरत

हनुमंत दुरंत नदी अब नापौ।
रघुनाथ सहोदर जी अभिलापौ॥

तब जो तुम सिंधुहि नाँघि गये जू।
अब नाँघहु काहे न भीत भये जू॥ ७१॥

हनुमान

सीतापद संमुख हुते, गये सिंधु के पार।
विमुख भये क्यों जाहुँ तरि, सुनौ भरत यहि बार॥ ७२॥

धनु बान लिये मुनिबालक आये।
जनु मन्मथ के युग रूप सुहाये॥
करिबे कहँ सूरन के मद हीने।
रघुनायक मानहुँ द्वै बपु कीने॥ ७३॥

भरत

मुनिबालक हौ तुम यज्ञ करावौ।
सु किधौं वर बाजिहिं बाँधन धावौ॥
अपराध क्षमौ सब आशिष दीजै।
वर बाजि तजौ, जिय रोष न कीजै॥ ७४॥
बाँध्यौ पट्ट जो शीश यह, क्षत्रिन काज प्रकास।
रोष करेउ बिन काज तुम, हम विप्रन के दास॥ ७५॥

कुश

बालक वृद्ध कहौ तुम काको।
देहनि कौ, किधौं जीवप्र

है जड़ देह, कहै सब कोई।
जीव, सो बालक वृद्ध न होई॥ ७६॥

जीव जरै न मरै नहिं छीजै।
ताकहँ सोक कहा करि कीजै॥
जीवहिं विप्र न छत्रिय जानौ।
केवल ब्रह्म हिये महँ आनौ॥ ७७॥

जो तुम देहु हमें कछु सिच्छा।
तौ हम देहिं तुम्हें हय भिच्छा॥
चित्त विचार परै सोइ कीजै।
दोष कछू न हमें अब दीजै॥ ७८॥

विप्र बालकन की सुनि बानी।
क्रुद्ध सूरसुत भो अभिमानी॥
विप्र-पुत्र तुम सीस सँभारौ।
राखि तेहि अब ताहि पुकारौ॥ ७९॥

लव

सुग्रीव कहा तुमसों रन माँड़ौं।
तो अति कायर जानिकै छाँड़ौं॥
बालि तुम्हैं बहु नाच नचायो।
कहा रन मंडन मोसन आयो॥ ८०॥

फलहीन सो ताइहूँ बान चलायो।
अति बात भ्रम्यो बहुधा मुरझायो॥
तब दौरि के बान विभीषन लीन्हों।
लव ताहि विलोकतहीं हँसि दीन्हों॥ ८१॥

आउ विभीषन तू रनदूषन।
एक तुहीं कुल को किल भूषन॥
जूझ जुरे जे भले भय जी के।
शत्रुहि आइ मिले तुम नीके॥ ८२

देववधू जबहीं हरि ल्यायो।
क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो॥
यों अपने जिय के डर आयो।
छुद्र सबै कुलछिद्र बतायो॥ ८३॥

जेठो भैया अन्नदा, राजा पिता समान।
ताकी पत्नी तू करी, पत्नी मातु समान॥ ८४॥

को जाने कै बार तू. कही न ह्वैहै माइ।
सोई तैं पत्नी करी, सुनु पापिन के राइ॥ ८५॥

सिगरे जग माँझ हँसावत हैं।
रघुवंसिन पाप नसावत हैं॥

धिक तोकहँ तू अजहू जो जियै ।
खल जाइ हलाहल क्यौं न पियै ॥ ८६ ॥

कछु है अब तो कहँ लाज हिये ।
कहि कौन विचार हथ्यार लिये ॥
अब जाइ करीप की आगि जरौ ।
गरु बाँधि कै गागर बूड़ि मरौ ॥ ८७ ॥

कहा कहौं हौं भरत कों, जानत है सब कोय ।
तोसों पापी संग है, क्यों न पराजय होय ॥ ८८ ॥

बहुत युद्ध भो भरत सों, देव अदेव समान ।
मोहि महारथ पर गिरे, मारे मोहन बान ॥८९॥

भरतहि भयौ विलंब कछु आये श्रीरघुनाथ ।
देख्यौ वह संग्रामथल, जूझि परे सब साथ ॥९०॥

रघुनाथहि आवत आइ गये । रन में मुनिबालक रूप रये ॥
गुन रूप सुसीलन सौं रन मैं । प्रतिबिंब मनों निज दर्पन मैं ॥९१॥

सीता समान मुखचंद्र विलोकि राम ।
बूझ्यो कहाँ बसत हो तुम कौन ग्राम ॥
माता पिता कवन कौनेहि कर्म कीन ।
विद्याविनोद शिष कौनेहि अस्त्र दीन ॥९२॥

कुश

राजराज तुम्हैं कहा मम वंश सों अब काम।
बूझि लीन्हहु ईस लोगन जीतिकै संग्राम॥

राम

हौं न युद्ध करौं कहै विन विप्रवेश विलोकि।
वेगि बीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि॥९३॥

कुश

कन्यका मिथिलेश की हम पुत्र जाये दोइ।
बालमीक अशेष कर्म करे कृपारस भोइ।
अस्त्र शस्त्र सबै दये अरु वेद भेद पढ़ाइ।
बाप को नहिं नाम जानत, आजु लौं रघुराइ॥९४॥

जानकि के मुख अक्षर आने।
राम तहां अपने सुत जाने॥
विक्रम साहस सील विचारे।
युद्ध कथा कहि आयुध डारे॥९५॥

राम

अंगद जीति इन्हैं गहि ल्यावो।
कै अपने बल मारि भगावो॥
वेगि बुझावहु चित्त चिता को।
आजु तिलोदक देहु पिता को॥९६॥

अंगद तौ अँग अंगनि फूले।
पौन के पुत्र कह्यो अति भूले॥
जाइ जुरे लव सौं तरु लै कै।
बात कही सतखंडन कै कै॥९७॥

लव

अंगद जौ तुम पै बल होतो।
तौ वह सूरज को सुत को तो?
देखत ही जननी जो तिहारी।
वा सँग सोवति ज्यौं बरनारी?९८॥

जा दिन तैं युवराज कहाये।
विक्रम बुद्धि विवेक बहाये॥
जीवत पै कि मरे पहँ जैहै।
कौन पिताहि तिलोदक दैहै॥९९॥

अंगद हाथ गहै तरु जोई।
जात तहाँ तिल सौं कटि सोई॥
पर्वत पुंज जिते उन मेले।
फूल के तूल लै बानन झेले॥१००॥

बानन बेधि रहीं सब देही।
बानर ते जो भए अब सेही॥

भूतल ते सब मारि उड़ायो।
खेल के कंदुक को फल पायो ॥१०१॥
सोहत हैं अध ऊरध ऐसे।
होत बटा नट को नभ जैसे ॥
जान कहूँ न इतै उत पावै।
गो बल चित्त दसौं दिस धावै ॥१०२॥
बोल बह्यो सो भयो सुरभंगी।
ह्वै गयो अंग त्रिसंकु को संगी ॥
हा रघुनायक हौं जन तेरो।
रच्छहु, गर्व गयो सब मेरो ॥१०३॥
दीन सुनी जब की जब बानी।
जी करुना तब आनन आनी ॥
छाँड़ि दियो गिरि भूमि परयोई।
बिह्वल ह्वै अति मानो मरयोई ॥१०४॥

भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खड़े करतार करे कै।
भारे भिरे रणभूधर भूप न टारे टरे इभ कोट अरे कै ॥
रोष सों खड्ग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहु गरे कै।
राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खायें मरे नग नाग परे कै ॥१०५॥

बानर ऋच्छ जिते निशिचारी। सेन सबै इक बान सँहारी ॥
बान विधे सब ही जब जोये। स्यंदन में रघुनंदन सोये ॥१०६॥

रन जोइ कै सब सीस भूपन संग्रहे जे भले भले।
हनुमंत को अरु जामवंतहिं बाजि ज्यों ग्रसि ले चले॥
रन जीति कै लव साथ लै करि मातु के कुस पाँ परे।
सिर सूँघि कंठ लगाय आनन चूमि गोद दुवौ धरे॥१०७॥

चीन्हि देवर को विभूपन देखि कै हनुमंत।
पुत्र हौं विधवा करी. तुम कर्म कीन दुरंत॥
बाप को रन मारियो अरु पितृभ्रातृ सँहारि।
आनियौ हनुमंत बाँधि न, आनियो मोहि मारि॥१०८॥

माता, सब काकी करी विधवा एकहि बार।
मो सी और न पापिनी, जाये वंशकुठार॥१०९॥

पाप कहाँ हति बापहिं जैहौ।
लोक चतुर्दश ठौर न पैहौ॥
राजकुमार कहै नहि कोऊ।
जारज जाइ कहावहु दोऊ॥११०॥

कुश

मो कहँ दोष कहा सुनु माता।
बाँधि लियो जो सुन्यो उन भ्राता॥
हौं तुमहीं तेहि बार पठायो।
राम पिता कब मोहिं सुनायो॥१११॥

मोहि विलोकि विलोकि कै, रथ पर पौढ़े राम।
जीवत छाँड़यो युद्ध में माता कर विश्राम ॥ ११२ ॥

आइ गये तबहीं मुनिनायक।
श्री रघुनंदन के गुनगायक ॥
आन विचारि कही सिगरी कुस।
दुःख कियो मन में कलिअंकुस ॥ ११३ ॥

मुनि

कीजै न विडंबन संतति सीते।
भावी न मिटै सु कहूँ जगगीते ॥
तू तौ पतिदेवन की गुरु बेटी।
तेरी जग मृत्यु कहावति चेटी ॥ ११४ ॥

सिगरे रनमंडल माँझ गये।
अवलोकतहीं अति भीत भये ॥
दुहुँ बालन को अति अद्भुत विक्रम।
अवलोकि भयो मुनि के मन संभ्रम ॥ ११५ ॥

सोनित सलिल, नर-वानर सलिलचर,
गिरि बालिसुत, विष विभीषन डारे हैं।
चमर पताका बड़ी बड़वा अनल सम,
रोगरिपु जामवंत केशव विचारे हैं ॥

वाजि सुरवाजि, सुरगजि से अनेक गज,
भरत सबंधु इंदु अमृत निहारे हैं।
सोहत सहित शेष रामचंद्र केशव से,
जीति कै समर सिंधु साँचे हू सँवारे हैं॥ ११६॥

सीता

मनसा वाचा कर्मणा, जो मेरे मन राम।
तौ सब सेना जी उठै, होहि घरी न विराम॥ ११७॥

जीय उठी सब सेन सभागी।
केशव सोवत तैं जनु जागी॥
त्यौं सुत सीतहि लै सुखकारी।
राघव के मुनि पाँयन पारी॥ ११८॥

सुभ सुंदरि सोदर पुत्र मिले जहँ।
वर्षा वर्षे सुर फूलन की तहँ॥
बहुधा दिवि दुंदुभि के गन बाजत।
दिगपाल गयंदन के गन लाजत॥ ११९॥

सुंदरी सुत लै सहोदर वाजि लै सुख पाइ।
साथ लै मुनि बालमीकिहि दीह दुःख नसाइ॥
राम धाम चले भले यस लोकलोक बढ़ाइ।
भाँति भाँति सुदेस केसव दुंदुभीन बजाई॥ १२०॥

भरत लक्ष्मण शत्रुहा पुर भीर टारत जात।
चौर ढारत हैं दुवौ दिसि पुत्र उत्तमगात॥
छत्र है कर इंद्र के सुभ सोभिजैं बहु भेव।
मत्तदंति चढ़े पढ़ैं जय शब्द देव नृदेव॥१२१॥

यज्ञथली रघुनंदन आये।
धामनि धामनि होत बधाये॥
श्रीमिथिलेशसुता बड़ भागी।
स्यों सुत सासुन के पग लागी॥१२२॥

चारि पुत्र द्वै पुत्र सुत, कौशल्या तब देखि।
पायो परमानंद मन, दिगपालन सम लेखि॥१२३॥

यज्ञ पूरन कै रमापति दान देत अशेष।
हीर नीरज चीर मानिक वर्षि वर्षा वेष॥
अंगराग तड़ाग बाग फले भले बहु भाँति।
भवन भूषण भूमि भाजन भूरि बासर राति॥१२४॥

एक अयुत गज बाजि द्वै, तीन सुरभि शुभवर्ण।
एक एक विप्रहिं दई, केसव सहित सुवर्ण॥१२५॥

देव अदेव नृदेव अरु, जितने जीव त्रिलोक।
मन भायो पायो सबन, कीन्हें सबन अशोक॥१२६॥

टिप्पणी।

मंगलाचरण

१. बालक—हाथी का बच्चा। मृणालनि—कमल-नालों को। अकाल—अकाल में उत्पन्न। दीह—दीर्घ, बड़े। कलुख—पाप। कै—करके। कलंक-अंक—कलंक-चिन्ह। भवसीस—ससिसम, महादेव के सिर पर स्थित चन्द्रमा के समान (महादेव के सिर पर द्वितीया का चन्द्रमा रहता है जो निष्कलंक होता है)। वपुख—वपुष्—शरीर। सांकरे की—संकट की। सांकरनि—जंजीरों को। दशमुख—दशों दिशाओं के लोगों के मुख अथवा दश मुख—ब्रह्मा के चार मुख + शिव के पांच मुख + महेश का एक मुख। जोवैं—ताकते हैं।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास, यमक, परिकरांकुर।

२. बानी—सरस्वती। उदारता—महिमा। उदार—बड़ी। केहूँ—किसी ने। केहूँ न—किसी प्रकार नहीं। काहू पै—किसी से। पति—ब्रह्मा। पूत—शिव। नाती—कार्त्तिकेय। तदपि—तथापि।

अलंकार—संबन्धातिशयोक्ति, अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तिप्रकाश।

३. पूरण—सम्पूर्ण। पुराण—पुराणशास्त्र। पुराण—पुराने।

परिपूरण—सब प्रकार पूर्ण। उक्ति—बात। दरशन...न—जिन्हें दर्शन भी नहीं समझ पाते वे भक्तों को दर्शन देते हैं। अनुदिन—नित्य। पुनरुक्ति को—बार बार दुहराने के दोष को (काव्य में किसी बात के दुहराने से पुनरुक्ति-दोष माना जाता है)। देहि—देता है। अणिमा—वह सिद्धि जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप धारण किया जा सकता है। गरिमा—वह सिद्धि जिससे गुरु से गुरु रूप धारण किया जा सकता है। महिमा—वह सिद्धि जिससे बड़ा से बड़ा रूप धारण किया जा सकता है।

अलंकार—सबन्धातिशयोक्ति, अनुप्रास, यमक।

(१) अयोध्यापुरी-वर्णन

१-२. आवास—घर। शोभा.....अकाश—सजावट की वस्तुएँ आकाश में सुशोभित हो रही हैं। साधु—(१) सीधी (२) शरीर को साधने वाली। थिर—(१) कम्परहित (२) स्थिरचित्त। तपोमय—तपस्विनी। दंड धारिणी—(१) बाँस के डण्डे के ऊपर स्थिर (२) डण्डे के सहारे चलने वाली। अति सुन्दर...जानि में विरोधाभास अलंकार है।

३. शिखर—चोटी। वश वारिद—बादल के वशवर्त्ती। वहो रहि—लौटा ले जाते हैं। अरुझि—उलझी हुई (ध्वज दण्डों में)। सुदेश—सुन्दर।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, सन्देह, अनुप्रास

५. छोभैं—क्षुब्ध होते हैं। छम—क्षम—समर्थ।

६. कवि—(१) काव्य कर्त्ता (२) शुक्र। विद्याधर—(१) विद्वान (२) देव विशेष। कलाधर—(१) कला-निपुण (२) चन्द्रमा। राजराज—(१) श्रेष्ठ क्षत्रिय (२) कुबेर। गणपति—(१) एक समूह का स्वामी,

अधिकारी (२) गणेश। सुखदायक—(१) सुख देने वाले (२) इन्द्र। पशुपति—अश्वशाला, गजशाला इत्यादि के अधिकारी (२) महादेव। सूर—(१) वीर (२) सूर्य। सेनापति—सेना के नायक (२) कार्त्तिकेय। बुधजन—(१) बुद्धिमान मनुष्य (२) बुद्ध नक्षत्र। मंगल—(१) माँगलिक (२) मंगल ग्रह। गुरु—(१) गुरु जन (२) बृहस्पति। धर्मराज—(१) न्यायकर्त्ता (२) यमराज। मनसाकर (१) मनोवांछित फल देने वाले (२) कल्पवृक्ष। करुणामय—(१) दयापूर्ण (२) विष्णु। सुरतरंगिनी—(१) सरयू (२) आकाश गंगा।

अलंकार—मुद्रा

८. पगार—चहार दीवारी। नारि—समूह। अंगनि—आँगन। हरि—विष्णु। चित्री—चित्रित। आरसी—दर्पण।

११-१२. अधोगति—(१) निम्नगति, जमीन के भीतर प्रवेश (२) अधःपतन, दुर्दशा। मलिनाइय—(१) मैलापन (२) मलीनता, मनोमालिन्य। दुर्गति—(१) कठिनाई से प्रवेश (२) दीन-हीन दशा। कुटिल गति—(१) टेढ़ी चाल (२) दुर्वृत्ति। श्रीफल—बेल का फल (स्तनों से उपमा देने के लिए) (२) धन-संपत्ति। चंचल—(१) हिलने वाला (२) अस्थिर, दृढ़ता से रहित। चलदलै—पीपल का पेड़। विधवा—(१) धव नामक वृक्ष से रहित (२) पति हीना। वनी—वाटिका।

अलंकार—परिसंख्या का उत्कृष्ट उदाहरण।

१४. बिमानी कृत राजहंस—(१) श्रेष्ठ अभिमानी राजाओं को मान रहित करने वाले (२) राजहंस की सवारी किए हुए। विबुध—(१) पण्डित (२) देवता। दीपति—दीप्ति, तेज। दिपति—प्रकाशित होती है। दीपियतु—प्रकाशित हो जाते हैं। सुदक्षिणा—(१) सुन्दर दक्षिणा (२) दिलीप की स्त्री का नाम। की—अथवा। वाहिनी—(१) सेना (२) नदी।

क्षणदान प्रिय—प्रत्येक क्षण दान देने वाले (२) जिसे क्षणदा (रात्रि) अप्रिय है। भगीरथ पथगामी—भगीरथ द्वारा स्थापित राजनीति का अनुसरण करने वाला (२) भगीरथ से पीछे-पीछे चलने वाला।

अलंकार—उल्लेख, उपमा, श्लेष, यमक, सन्देह, रूपक।

१५. ईंधन—लकड़ी। प्रतापानल—प्रताप रूपी अग्नि। पल-पल—प्रत्येक क्षण।

अलंकार—विभावना तथा रूपक।

(२) सीता-स्वयम्वर

१-२ खण्डपरस—शिव। अशेष—सम्पूर्ण। धर—पृथ्वी। सुधारि—सुधार कर दिया है। मंडि—सुशोभित करके। जोन्हाई—ज्योत्स्ना से। स्यों—साथ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा

७. अरुण-गात—लाल वर्ण वाले। अति—इसका सम्बन्ध अरुण गात अथवा प्रात दोनों में से किसी के साथ हो सकता है। पद्मिनी प्राणनाथ—कमलिनी वल्लभ सूर्य। भय—हो गए हैं। कोकनद—कमल। कोक—चक्रवाक। परिपूरण—समस्त। सिन्दूर-दूर—सिन्दूर से रंगा हुआ। मढ्यौ मानिक मयूख-पट—माणिक्य की किरणों के वस्त्र से मढ़ा हुआ। शोणित-कलित—रक्त से भरा। दिग्भामिनि—पूर्व दिशा रूपी स्त्री। लाल—लालमणि।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, सन्देह, रूपक, अनुप्रास, यमक।

९. लाल श्रीमुख—लाल रंग वाले सूर्य।

१०. झुकि—झुककर। महराय—हिलाकर। जिस समय बन्दर

झुक कर वृक्ष इत्यादि को हिलाते हैं उस मुद्रा की ओर सुन्दर संकेत है। इसमें सांग रूपक अलंकार है।

११. वारुणी—(१) पश्चिम दिशा (२) शराब। द्विजराज—(१) चन्द्रमा (२) ब्राह्मण। भगवंत—(१) सूर्य (२) भगवान। अलंकार—श्लेष।

१६. नगरी—बस्ती। नागरी—चतुर स्त्रियाँ। प्रतिपद—(१) प्रत्येक पैर में (२) प्रत्येक स्थान पर। हंसक—(१) बिछुआ (२) हंस। जलजहार—(१) मोती वाले (२) कमल वाले। पयोधर—(१) स्तन (२) तालाब। पीन—(१) पुष्ट (२) बड़े बड़े।

अलंकार—श्लेष।

१४-१५. बीसबिसे—निश्चय। ऋषि—याज्ञवल्क्य। राजहि लीने—राजा जनक को साथ लेकर।

१६. दान कृपान विधानन सों—दान देकर तथा युद्ध करके। अंग छ सातक आठक सो भव—वेद के छः (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द) राज्य के सात (राजा, मन्त्री, मित्र, निधि, देश, दुर्ग तथा सेना) और योग के आठ (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) अंगों से उत्पन्न। सिद्धि—कार्य सिद्धि। वेदत्रयी—ऋक्, यजुस, साम। राजसिरी—राजसी वैभव। वेदत्रयी...है—सरस्वती और श्री का पूर्ण तथा शुभ योग है जो अन्यत्र नहीं मिलता।

अलंकार—रूपक।

१९. भवभूषण—विभूति—राख। मसी—कालिख। इस छन्द में व्यतिरेक अलंकार है।

२१. भवि—भव्य—सुन्दर। अकत्थ—अकथनीय, कठिन।

२६. दानिन के शील—दानियों में श्रेष्ठ। परदान के प्रहारी दिन

—(१) विरोध पक्ष में दूसरों से नित्य दान लेने वाले (२) विरोध परिहार पक्ष में शत्रुओं से दण्ड रूप दान लेने वाले। दानवीर – विष्णु। परदार —(१) विरोध पक्ष में, दूसरे की स्त्री (२) परिहार पक्ष में पृथ्वी।

अलंकार—विरोधाभास, उपमा, अनुप्रास।

२८. काल-काल—काल का भी काल। चन्द्र चूड़—महादेव। पन्नगपतिप्रभु—बड़े बड़े सर्पों के स्वामी अर्थात वासुकी। पनच—प्रत्यंचा। पर्वतारि—इन्द्र। पर्वत-प्रभा—दैत्य। धनुष की प्रचण्डता के वर्णन करते समय कर्कश वर्णों का प्रयोग सर्वथा समीचीन है।

अलंकार—व्यतिरेक, अनुप्रास, उपमा (कोमल कमल पाणि)

३१. उत्तम-गाय—प्रशंसित। निर्गुण—(१) गुण रहित (२) प्रत्यञ्चा रहित। गुणवन्त (१) गुणयुक्त (२) प्रत्यञ्चायुक्त। राजकुमार... कीन्हों—रामने कटाक्ष रूपी उत्कृष्ट बाण उस पर सन्धान कर उस धनुष को सच्चा शरासन (बाणों का आसन) बनाया।

अलंकार—रूपक, अनुप्रास तथा परिकरांकुर।

३२. क्रुद्धि—क्रुद्ध होकर। नवखण्ड—इला, रमणक, हिरण्य, कुरु, हरि, वृष, किंपुरुष, केतुमाल, और भरत। अचला—पृथ्वी। ऋषि-राज—विश्वामित्र। ईश—महादेव। जगदीश—विष्णु। बाँधि ... ब्रह्मण्ड को—धनुष का शब्द स्वर्ग तथा मोक्ष पद में व्याप्त होकर ब्रह्माण्ड को पार करके उससे परे चला गया। इस स्थान पर धनुर्भंग का कितना फड़कता हुआ वर्णन विजयाछन्द तथा कर्कश वर्णों के प्राचुर्य द्वारा किया गया है।

अलङ्कार—संबन्धातिशयोक्ति तथा अनुप्रास।

(३) परशुराम-सम्वाद

५. शिरनैन—अग्नि। कलंकित के—कलंकी रावण की। सित-कण्ठ—महादेव। कठुला—माला।

७–८. क्रतु—यज्ञ। नरसिसु—सामान्य बालक।

१०–११. सुखमा-सुषमा—सौन्दर्य। पूरन पुरुष—विष्णु। बीसे बिसे—निश्चय ही। करमूल—बगल में। प्रथम छन्द में राम का तथा द्वितीय में परशुराम का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है।

१३–१६. हैहयाधिराज—सहस्रार्जुन। भर्गभक्त—शिव का भक्त। तिनूका—तिनका।

१७. हलाहल—विष। मेद—चर्बी। सोन—रक्त। इस छन्द में इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि विष के प्रभाव को मिटाने के लिए घी पिलाना चाहिए, ताजा खून पिलाना चाहिए और चूने का पानी पिलाना चाहिए। इससे केशव के वैद्यक-ज्ञान का भी कुछ परिचय मिलता है। इसमें रूपक अलङ्कार है।

२२. गिरि—क्रौञ्चपर्वत्। वेधि—विद्ध करके। तारकनन्द—तारकासुर।

२७. पछ्यावरि—शिखरन। अलंकार—रूपक।

३१–३२. लक्ष्मण के पुरिखान—लक्ष्मण के पहले के क्षत्रियों ने। हौ—हृदय। सची—की।

३७. ईश—शिव। इस पूरे छन्द का इस प्रकार अर्थ करना चाहिए—शंकर का धनुष तो टूट ही चुका अब आपको भी कष्ट सहन करना पड़ेगा। अब ब्रह्मा की सारी सृष्टि भले ही नष्ट हो जाय, शंकर अपने आसन से भले ही विचलित हो जायँ, सारे लोकों का भले ही

संहार हो जाय; शेष भले ही पृथ्वी को अपने सिर से उतार कर अलग कर दें, सातों समुद्र भले ही मिल कर एक हो जायँ। सारे विश्व में भले ही घना अन्धकार व्याप्त हो जाय और नारायण की मंगलाविधायिनी विश्व व्यापिनी ज्योति भले ही नष्ट हो जाय, मैंने अब अपने धनुष को बाणों से युक्त कर लिया और हे परशुराम आप भी अपना कुठार सम्हाल लीजिए (लड़ने के लिए तैयार हो जाइए)।

अलंकार—प्रतिज्ञाबद्ध, स्वभावोक्ति, अनुप्रास।

(४) वनमार्ग में राम

३. बरही—बल पूर्वक। उपादि—गुरु जनों की इच्छा के विरुद्ध, स्वेच्छा से। शिवा—पार्वती। संदेहालंकार।

४. सौदामिनी—बिजली। हंसजा—जमुना। भाग भारे भनो—इनके बड़े ही सौभाग्य हैं अर्थात् ये बड़े ही सौभाग्यशाली हैं। देवराज—इन्द्र। पुत्र—जयंत। पक्ष दू संधि—पूर्णिमा या अमावस्या। संध्या सँधी हैं—तीनों संध्याएँ निकट होकर सुशोभित हो रही हैं। प्रातः सन्ध्या का रंग लाल, मध्याह्न सन्ध्या का रंग श्वेत और सायं सन्ध्या का रंग श्याम माना गया है।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा, अनुप्रास।

६. सुधाधर—अमृत धारण करने वाला। सुधाधर—सुधा है अधर में जिसके। द्विजराज—नक्षत्रों का राजा। द्विजराजि—दाँतों की पंक्ति। कलानिधि—सोलह कलाओं वाला। कलाकलित—कला-निपुण। रत्नाकर········प्रकाश कर—चन्द्रमा पक्ष में—समुद्र को उल्लसित करने वाला (२) जानकी पक्ष में रत्नजटित आभूषणों को प्रकाशित करने वाली (आभूषणों से जानकी की शोभा नहीं होती प्रयुत

जानकी के द्वारा आभूषण प्रकाशित होते हैं)। अम्बरविलास—(१) चन्द्रमा पक्ष में—जो आकाश में सुशोभित होता है (२) जानकी पक्ष में—जिसमें रेशमी वस्त्र सुशोभित होते हैं। कुवलय—(१) कुमुद (२) पृथ्वी मंडल। शीत कर—शीतल किरणें। सीत कर—शीतलता (आनन्द) पहुँचाने वाली।

अलंकार—श्लेष उपमा, यमक।

१०. कलित-कलङ्क-केतु—अत्यन्त कलङ्की। केतु अरि—केतु है शत्रु जिसका। छीला—उथला जलाशय। सोई......सों—केशव दास कहते हैं वह मूर्ख कवि पक्का मूसलचन्द है।

अलंकार—व्यतिरेक, उपमा, यमक, अनुप्रास।

(५) पंचवटी-स्थिति राम

३. मीच—मृत्यु। कपटी......घटी—जहाँ के पवित्र वातावरण में आते ही कपटी भी पवित्र हो उठता है। निघटी.........तटी—सारे संसार के निवासी जो यहाँ आ जाते हैं यही चाहते हैं कि मृत्यु-रहित (अमर) होकर इसी स्थान के पवित्र तथा शान्त वातावरण में विचरण करते रहें और जो यहाँ बड़े-बड़े तपस्वी हैं उन्हें भी समाधि में वह आनन्द नहीं आता जो यहाँ के शान्तिमय वातावरण में। तटी—ध्यान। निघटी—घट जाती है। गुरुज्ञान—श्रेष्ठ ज्ञान। गटी—गठरी। धूरजटी—शिव।

अलंकार—उपमा, यमक, अनुप्रास।

४-४—सेव—सेवा। श्रीफल—(१) बेल का वृक्ष (२) धन, सम्पत्ति। बेर—बेला, समय। अर्क-समूह (१) अकवे का पेड़। (२) सूर्य समूह (द्वादश आदित्य)।

अलंकार—श्लेष, उत्प्रेक्षा, मुद्रा (सेव, श्रीफल, वेर, अर्क समूह इत्यादि पेड़ों के नाम आ जाने से)।

६-७. अर्जुन—(१) तृतीय पांडव (२) अर्जुन नाम का पेड़। भीम—(१) द्वितीय पाण्डव (२) अम्लवेतस का पेड़। सुभगा—सौभाग्यवती स्त्री। सिंदुर (१) सिंदूर (२) सिन्दूर का पेड़। तिलकावलि—(१) मञ्जरी पत्र रचना (२) तिलक नाम के पेड़। धाइ—(१) धवा का पेड़ (२) दाई। शितकण्ठ—(१) मयूर (२) शिव।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, मुद्रा।

८-११. सौगन्ध—सुगन्धि। वहुनयन देवेश—अनेक नेत्र वाले इन्द्र। कंजज—ब्रह्मा। हरि मन्दिर—(१) वैकुण्ठ (२) समुद्र। निगम वेद। विष—(१) विष (२) जल। जीवन—(१) प्राण (२) जल। अलंकार—विरोधाभास (श्लेषपुष्ट)।

१३. धूमपुर के निकेत—धूम-समूह। धूमकेतु—अग्नि। धूम योनि—बादल। की—अथवा। रूरे—वड़े। वगरूरे—ववंडर। शंवर—शंवरासुर जिसने रति का हरण कर लिया था। श्वपचराज—चाण्डाल। छाया जाया—मायामयी स्त्री।

अलंकार—सन्देह, उपमा, यमक, अनुप्रास।

२१-२८. तूर—तुरही। सार—मंजीरा। आवझ—पाशा। सौं—साथ। गौर मदाइन—इन्द्र धनुप। चन्द्रवधू—(१) चन्द्र इत्यादि देवताओं की स्त्रियाँ (२) वीरवहूटी। चन्द्र—(१) चन्द्रमा (२) सोम नामक अनुरूपा का एक पुत्र। अहिमाली—सर्प समूह (२) शिव।

२९. प्रमुदित पयोधर—(१) उमड़ते हुए बादल (२) उमड़ते

हुए स्तन। तडितरलाई—बिजली की तरलता। नयन अमल—(१) निर्मल नेत्र (२) नदियाँ निर्मल नहीं हैं। करेनुका गमनहर (१) आक्रमण के प्रयोग में आने वाली हथिनियों के आवागमन को दूर करने वाली (वर्षा में आक्रमण न होने के कारण), (२) हथिनी की मस्त चाल को हरने वाली। मुकुट—(१) रहित (२) मोती। अंबर-ललित—(१) मेघाच्छन्न आकाश से युक्त। (२) वस्त्र से ढकी हुई। नील कण्ठ—(१) मयूर (२) महादेव। इस पूरे पद्य का अर्थ इस प्रकार होना चाहिए—

यह वर्षा है अथवा कालिका जो इस प्रकार हृदय में उल्लसित होकर आगई है। वर्षा में जो इन्द्र धनुष है वही मानो कालिका की भोंहें हैं। वर्षा में जो उमड़ते हुए बादल हैं वे ही मानो कालिका के उमड़ते हुए स्तन हैं। वर्षा में जो बिजली का प्रकाश है वही मानो कालिका के आभूषणों की ज्योति है। वर्षा में कमलों की शोभा नष्ट हो गई है और नदियाँ निर्मल नहीं हैं यही मानो कालिका ने अपने नेत्रों की शोभा से कमलों की शोभा को फीका कर दिया है। वर्षा ने प्रबल हथिनियों की गति को हर लिया है (वर्षा में हथिनी द्वारा आक्रमण न होने के कारण ऐसा कहा गया है यही मानो कालिका ने हथिनी की मस्त चाल को हर लिया है (स्त्री की चाल की उपमा प्रायः हथिनी की मस्त चाल से देते हैं) वर्षा सुन्दर हँसों की मधुर ध्वनि से रहित है और कालिका के मोती जड़े बिछुओं की ध्वनि सुख देने वाली होती है अतः दोनों ही 'मुकुत सुहँसक सबद सुखदाई' होती हैं। वर्षा में आकाश मेघाच्छन्न रहता है और कालिका सुन्दर वस्त्रों से आवृत रहती है अतः दोनों ही अम्बर-ललित होती हैं। वर्षा नीलकण्ठ (मयूरों) के मन को मुग्ध करने वाली होती है और कालिका

भी नीलकण्ठ (महादेव) के मन को मुग्ध करती है। वर्षा तथा कालिका की उपर्युक्त इन समान विशेषताओं के कारण ही वर्षागमन पर यह सन्देह होता है कि यह वर्षा है अथवा कालिका।

अलंकार—सन्देह, रूपक, अनुप्रास, श्लेष, निदर्शना।

३२-३६. नीरज (१) कुमुद (२) मोती। पयोधर (१) बादल (२) स्तन। पाटीर—चन्दन।

(६) हनुमान लङ्का-गमन

१. हरि कैसो वाहन—गरुड़ के समान। पाहन—कसौटी। गिरि-गल-गण्ड ते—पहाड़ रूपी हाथी के गण्ड-स्थल से। सुवरन अलि—पीला भौंरा। कलंक-रंक—कलंक रहित। हवाई—आतिशबाजी का बाण। कमान—तोप।

अलंकार—उपमा, रूपक, सन्देह, अनुप्रास।

२. नाकपति शत्रु—मैनाक पर्वत।

१३. किन्नरी—किन्नर की स्त्री (२) नगी-कन्यका—पहाड़ी लड़कियाँ।

१६. धरे एक वेनी—जटाओं की एक लम्बी वेणी धारण किए हुए।

१८. माया न लीनी—मायाओं में फँसी हुई। कामबामा—रति। राम-रामा—जानकी।

२२. मघोनी—मघवानी—शची। मृडानी—पार्वती।

२६. विसर्पी—दौड़ने वाले।

३२. नील—कठिनाई से।

४२. श्रीरामोजय उचारकारि—अंगूठी के ऊपर 'श्रीराम जयति' शब्द लिखे हुए थे।

४८. कंकन—राम—रामचन्द्रजी तुम्हारे वियोग में इतने दुर्वल

हो गए हैं कि इस अंगूठी को कंकण के स्थान में पहनते हैं और इसे कंकण कहकर पुकारते हैं।

५०. दरीन—गुफाएँ। केसरी—(१) सिंह (२) केशर। घनश्याम—का सम्बन्ध घनन से है। घोरति—घोर ध्वनिओं से। साकत—शाक्त—शक्ति का उपासक।

अलंकार—उल्लेख, उपमा, यमक, अनुप्रास।

५४. सनेह—(१) तेल (२) प्रेम।

५७. गोपद—गाय की खुरी से बना हुआ गड्डा।

६१. झँझरी—जाली।

६२-६५. कहूँ रेनिचारी······डाढ़े—यहाँ यह कहकर कि राक्षसों की उपमा सुन्दर कामदेव से देना उचित नहीं केशव पर आक्षेप किया गया है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यहाँ उपमा का विषय सौन्दर्य नहीं है भयंकर अग्नि में जलना है और इस दृष्टि से यहाँ कोई दोष नहीं दिखलाई देता। दूसरी बात यह है कि दुराचार की दृष्टि से कामदेव और राक्षस दोनों ही समान हैं शारीरिक बनावट भले ही दोनों की एक समान न हो।

६६. उचरुखी है—ऊंचे उड़कर। पूर—धारा। गिरा—सरस्वती जिसका रंग सुनहला माना गया है। उत्प्रेक्षा लंकार।

(७) राम-सेना वर्णन

२. रोदसिहिं—पृथ्वी और आकाश को। बलनि बलति है—बल से उबलती हुई दिखलाई देती है। पतंग—पक्षी। पुहुमी—पृथ्वी।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास, यमक, अत्युक्ति।

३. दचकन—धक्के। मचकत—नीचे को झुक जाते हैं और फिर

ऊपर उठ आते हैं। भोगवती—अतल की राजधानी है। पृथ्वी के नीचे सात तहें हैं—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल।

अलंकार—अत्युक्ति, यमक, अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश।

(८) अंगद-रावण संवाद

१. करहाट—कमल की छतरी जो पहले पीली होती है फिर हरी हो जाती है।

३. अनैसे—अनिष्ट—दुष्ट।

६. देवदूषण—रावण।

९. लोकेश—दिग्पाल।

१०. हैहयराज—सहस्रार्जुन।

११. धनुरेख—लक्ष्मण द्वारा बनाई गई धनुष की रेखा। जरी—जड़ी हुई, युक्त। जराइ—जरी—नगजटित।

१७-१८. क्षपानाथ—चन्द्रमा। सका—भिश्ती। शिखी—अग्नि। महादण्ड धारी—यमराज। अलंकार—उदात्त।

१९. पेट चढ्यो—गर्भ में आया। चित्रसारी—रंग महल। चढ़ि चित्त सों—अभिमान से उन्मत्त। अलंकार—सार, अनुप्रास, लोकोक्ति।

२४. घाव—जादूगर। भगर—कबड्डी।

२६. धरको—संशय।

(९) राम-रावण युद्ध

१. रावनै चले चले ते—रावण के चलने पर वे भी चले।

२. सुविशेष कै—विशेष रूप से सजाकर। तून अक्षय—बाण—

ऐसा तरकस जिसके बाण कभी कम न हों। अभेद—अभेद्य। अप्रमेय—अनेक।

१. लघुता—तीव्रता। अंतक—यमराज। दक्ष है—सावधान होकर। छतना करे—छेदकर मधुमक्षिका के छत्ते के समान कर दिया।

५-९. धर—धरा—भूमि। एक—कुल। नैगृत्यन को—राक्षसों का

१०. कान के प्रमाण—कानतक। स्यों—साथ। चर्म—ढाल। वर्म—कवच। अशेष कण्ठमाल भेदि—सब सिरों को काटकर।

११. सूरज—सुग्रीव। पट्टिस—खाँडा। परिघ—गँड़ासा। तोमर—शापला। कुंत—बर्छी। भिंदिपाल—ढेलवाँस, मोगरा—मुद्गर। कटरी—कटार। नेजा—भाला।

१४. रिस—युद्ध। खंडित—अभिभूत। सूर-सहायक—देवताओं की रक्षा करने वाले।

१७ भुव भारहि—अनुराग्यो—पृथ्वी के भार के साथ ही राक्षसों का गण रसातल को चला गया। सुर-दुन्दुभि''''''साथहिं लाग्यो—रावण के सिर पर राम के बाण और देव-दुन्दुभी के ऊपर डण्डे एक ही साथ लगे।

अलंकार—अक्रमातिशयोक्ति, सहोक्ति।

(१०) सीता की अग्निपरीक्षा

२-५. पुत्रिका—पुतली। रची—रँगी। गिरा-पूर—सरस्वती की धारा। पयोदेवता—जलदेवी। शिफाकंद—कमलकंद। पद्मा—लक्ष्मी। सूर-सयुक्त—सूर्य की किरणों से घिरी हुई। धरा-पुत्र—मंगल।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह।

६. शुभि—सुन्दर। चित्र—पुत्री—पुतली।

७. शुभसीता—पवित्र। अलंकार—सन्देह, उत्प्रेक्षा।

(११) रामराज्य-वर्णन

१. अनन्ता—पृथ्वी। सप्त ईहि—सात प्रकार के विघ्न जिनसे खेती को हानि पहुँचती है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शलभ, शुक, स्वदेशी राजा की प्रजा से लड़ाई, विदेशी राजा का आक्रमण)। जिन्हें—जिनसे। अल्पधी—मान—रहित होकर।

अलंकार—संबन्धातिशयोक्ति।

२. निम्नगा—नदियाँ। पूर—धारा। कामगो—कामधेनु। स्ववाजि—उच्चैश्रवा। स्वदन्ति—ऐरावत। अलंकार—संबन्धातिशयोक्ति।

३-६. क्षमी—शक्तिवाले। सौगन्ध—सुगन्ध। चित्त-चातुर्य—चिन्तापहारी—सब अपने चित्त के चातुर्य से दूसरों की चिन्ता को दूर करने वाले हैं। सद्मिनी—स्थान। चित्रिणी, पद्मिनी—कोकशास्त्र के अनुसार पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी चार प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं उनमें पद्मिनी तथा चित्रिणी श्रेष्ठ मानी गई हैं।

७-८. भ्रमे संभ्रमी यत्र—भ्रम ही जहाँ चक्कर में हैं क्योंकि उस के लिए रहने को स्थान ही नहीं है राम राज्य के लोग सभी संभ्रम (चिन्ता) से मुक्त हैं। अधर्मै अधर्मी—अधर्म ही धर्म-रहित है, प्रजा के लोग सभी धर्म पूर्ण हैं। दरिद्रै दरिद्री—दारिद्र्य ही जहाँ दरिद्र है। प्रजा के लोग सभी दारिद्र्य से रहित हैं। अलोकै...अलोकी—जहाँ कलंक ही कलंकित है प्रजा के लोग सभी कलंकरहित हैं। बालनाश (१) केश का नाश (२) बालक का नाश।

अलंकार—श्लेषपरिपुष्ट—परिसंख्या।

९-१०. व्याकरणै द्विज वृत्तिन हरै—जहाँ केवल व्याकरण पढ़ते समय ब्राह्मण सूत्रों की वृत्तियों-अर्थों का अध्ययन करते हैं प्रजाओं में कोई व्यक्ति किसी अन्य की वृत्ति (जीविका) का हरण नहीं करता। वेझाई मारिये—केवल वीर लोग निशाने को ही मारते हैं राज्य में कोई किसी को नहीं मारता। खेलत ......हारिए—हार केवल खेल में ही होती है और राज्य में किसी प्रकार की हार नहीं है।

अलंकार—श्लेष, परिपुष्ट, परिसंख्या।

११-१२. भावै जहाँ व्यभिचारी—राम-राज्य में केवल साहित्य में संचारी भावों का उल्लेख रहता है प्रजा में कोई भी व्यभिचारी नहीं है। परनारी—(१) दूसरों की नाड़ी (२) दूसरों की स्त्री। मान भंग—(१) मान का छूटना (२) अपमान। सिंधुहि—शरीर की—जहाँ वीरों के शरीर की शक्ति का यश ही समुद्र का उल्लंघन कर दूसरे पार चला जाता है, प्रजाओं में कोई मर्यादा या नियम का उल्लंघन नहीं करता। वन्ध्या वासनानि—जहाँ केवल वासनाएँ ही वन्ध्या (प्रभाव रहित) हैं, स्त्रियों में कोई भी वन्ध्या नहीं है। तिथिहि को क्षय—केवल पत्रा में तिथि की क्षय होती है, राम राज्य में किसी की क्षय नहीं।

१३. पाप-पहनै—पाप का नगर। बाँधिबे.......बाँधियतु—यदि कोई चीज बाँधी जाती है तो तालाब ही बाँधे जाते हैं (बनवाये जाते हैं), लोगों में से किसी को बाँधने की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि वे किसी प्रकार के अपराध नहीं करते।

अलंकार—परिसंख्या।

१४. देवसभा—पूजनार्थ मूर्तियों का समूह। सुर-राज—इन्द्र।

(१२) रामाश्वमेध वर्णन

१-१. गाथ—बात। शुचि सों—पवित्रता से। श्रुति—कान। पट्ट—पट्टी (विजय श्री)। नरदेव—राजा।

८. चमू-चय—सेना-समूह। सुर—सूर्य। राजश्री—राज्य लक्ष्मी। लाजनि—लावा।

अलंकार—संबन्धातिशयोक्ति सन्देह, अनुप्रास।

९. न माई—नहीं समाता है। अलंकार—उत्प्रेक्षा, सन्देह, अनुप्रास।

१०. गाथ की—यश फैलाया। आपने ही हाथ की—स्वयं ले ली। मुद्रित......कै—सातों समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी पर अपनी छाप का सिक्का चलाकर।

अलंकार—अत्युक्ति, यमक, पुनरुक्तिप्रकाश।

१२. एक वीरा......बली—वीरपत्नी कौशल्या के पुत्र रघुवंशी राम के द्वारा यह घोड़ा छोड़ा गया है; जो अपने को वीर समझता हो इसे पकड़े।

१५. मोक्यो—जो प्रायः छोड़े ही जाने वाला था।

१९. एक ध्वज...... खंडियो—एक बाण से ध्वजा, दो से सारथी और तीन से रथ को खंडित कर दिया। तूल सम—समतूल—समान।

२०-२१. पत्री—बाण। मोहे—मूर्च्छित होकर।

२७. गाहियो—पार कर लिया। बरसो—वट वृक्ष तुल्य। बर परयो—हठपूर्वक नष्ट कर दिया। जातन—जिसकी ओर। करीश्वर—प्रबल हाथी।

अलंकार—उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास।

३२. भग्गुल—रणभूमि छोड़कर भगे हुए।

३६-४०. यहि......भारे—इस संसार के तथा काल के कर्म बहुत ही भयंकर तथा टेढ़े हुआ करते हैं। प्रबोधु—समझदारी।

४६. तेहिवार न वार भई—उस समय देर नहीं हुई। विरंचैं—ब्रह्मा को। शोणित रोचि रचैं—खून के रंग रंगे हुए। परिपूरन...... फिरचैं—मानों पनारों से कपूर के टुकड़ों से मिली हुई पीक की पूर्ण धारा बह रही हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, यमक, अनुप्रास।

५९-६६. जै—मत। नृपता—राजाओं का समूह।

६७-६९. दुरन्त—भयंकर। चर्म—ढाल। चक्र—भौंर। समर-भूमि का नदी के साथ बड़ा सुन्दर रूपक बाँधा गया है। अलंकार—साँग रूपक।

७९-८३. सूरसुत—सुग्रीव। देववधू—जानकी।

८७. करीष—कण्डे।

९४. कृपा रस भोय—दयार्द्र होकर। सेही—एक जानवर जिसके शरीर पर काँटे होते हैं।

१०२. तन्द्रा—नींद। गोबल—शक्ति नष्ट हो गई।

१०५. बल—बलपूर्वक। करहार करे कै—न मालूम ब्रह्मा क्या करेंगे। इम कोटि करे कै—ऐसा मालूम होता है मानो करोड़ों हाथी अड़ गए हों। मानो गड़ न टरेहु गरे कै—गले के कट जाने पर भी। खएँ......परे कै—ऐसा मालूम होता है कि मानो मरे हुए हाथियों के

मस्तक से गिरे हुए गजमोतियों के खाए पड़ गए हों। नग नाग—नाग नग-गजमोती।

११६. गिरि—मैनाक। रोगरिपु—धन्वन्तरि। सुखाजि—उच्चैः श्रवा। सुरगज—ऐरावत। सँवारे हैं—बनाए हैं।

अलंकार—सांगरूपक।

१२१. नीरज—मोती।